एनसीईआरटी

मार्जरी साइक्स
प्रथम स्मृति व्याख्यान
2008

समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति

मेधा पाटकर

1905-1995

स्मृति व्याख्यान शृंखला

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

विद्यया ऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

स्मृति व्याख्यान शृंखला

एनसीईआरटी

मार्जरी साइक्स
प्रथम स्मृति व्याख्यान
2008

समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति

मेधा पाटकर

1905-1995

एनसीईआरटी

स्मृति व्याख्यान शृंखला

प्रथम मार्जरी साइक्स स्मृति व्याख्यान 2008

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर

8 अप्रैल 2008

समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति

मेधा पाटकर

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अगस्त 2010 श्रावण 1932

PD 5H RA

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2010

80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा श्री वृंदावन ग्राफ़िक्स (प्रा.) लि., ई 34, सैक्टर 7, नोएडा (उ.प्र.) से मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग	:	*नीरजा शुक्ला*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*शिव कुमार*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*गौतम गांगुली*
संपादक	:	*रेखा अग्रवाल*
उत्पादन सहायक	:	*सुनील कुमार*

विषय सूची

हमारे उद्देश्य *v*

खण्ड 1 1
मार्जरी साइक्स
शिक्षा–सादगी, सौंदर्य और समानता के लिए

खण्ड 2 11
समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति

वक्ता के बारे में 37

अनुलग्नक
स्मृति व्याख्यान माला 2007–08 39

हमारे उद्देश्य

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) एक शीर्ष संगठन है जो स्कूल और शिक्षक शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अनुसंधान, सर्वेक्षण, विकास, प्रशिक्षण और विस्तार कार्य करके केंद्र सरकार और राज्य सरकारों की सहायता करता है तथा उनको परामर्श देता है।[1]

परिषद् के उद्देश्यों में से एक है– स्कूल और शिक्षक शिक्षा से संबंधित विचारों के वितरण-केंद्र और प्रसारक के रूप में काम करना। इस भूमिका को निभाने के लिए तथा महान शिक्षा विचारकों के जीवन एवं कार्य का यशोगान करने के लिए हमने वर्तमान स्मृति व्याख्यान माला शुरू की है। हमारा लक्ष्य भारत के प्रख्यात पुरुषों एवं महिलाओं द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में दिए गए बीजगर्भित योगदान के बारे में जन जागरूकता के स्तर को ऊपर उठाने का प्रयत्न करना है। हमें उम्मीद है कि इस प्रकार की जागरूकता से संवाद और चर्चा की एक शृंखला सृजित होगी। हमें आशा है कि राष्ट्रीय जीवन के इस महत्वपूर्ण आयाम में जनता के स्थायी योगदान को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ यह शृंखला शिक्षा को बौद्धिक जिज्ञासा का जीवंत विषय बनाएगी।

स्मृति व्याख्यान माला के अंतर्गत नौ प्रख्यात भारतीय शैक्षिक विचारकों और मार्ग प्रदाताओं के जीवन एवं कार्य का यशोगान करने वाले लोक व्याख्यान शामिल होंगे।

शीर्षक	*स्थान*
महात्मा गाँधी स्मृति व्याख्यान	इंडिया इंटरनेशनल सेंटर (आईआईसी), नयी दिल्ली
ज़ाकिर हुसैन स्मृति व्याख्यान	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, मैसूर
मार्जरी साइक्स स्मृति व्याख्यान	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर
रविन्द्रनाथ टैगोर स्मृति व्याख्यान	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर
महात्मा गाँधी स्मृति व्याख्यान	इंडिया इंटरनेशनल सेंटर (आईआईसी),
महादेवी वर्मा स्मृति व्याख्यान	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल
बी.एम. पुघ स्मृति व्याख्यान	पूर्वोत्तर क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, शिलांग

1. एन.सी.ई.आर.टी. के बारे में अधिक जानकारी www.ncert.nic.in पर उपलब्ध है।

शीर्षक	*स्थान*
सावित्रीबाई फूले स्मृति व्याख्यान	एसएनडीटी महिला महाविद्यालय, मुंबई
गिजुभाई बढ़ेखा स्मृति व्याख्यान	मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट,चेन्नई
श्री अरविंद स्मृति व्याख्यान	प्रेसिडेंसी कॉलेज, कोलकाता

हम अंग्रेज़ी में या किसी अन्य भारतीय भाषा में व्याख्यान देने के लिए शिक्षा जगत और सार्वजनिक जीवन के लब्ध-प्रतिष्ठ पुरुषों एवं महिलाओं को आमंत्रित करेंगे। हमारा आशय व्याख्यान माला को विशाल श्रोतागणों विशेषकर शिक्षकों, छात्रों, अभिभावकों, लेखकों, कलाकारों, गैर सरकारी संगठनों, सरकारी कर्मचारियों तथा स्थानीय समुदाय के लोगों तक पहुँचना है।

व्यापक प्रसार के लिए व्याख्यान कंपैक्ट डिस्क (सीडी) में तथा मुद्रित पुस्तिकाओं के रूप में उपलब्ध कराए जाएँगे। प्रत्येक पुस्तिका में दो खंड होंगे। खंड एक में स्मृति व्याख्यान के प्रयोजन के साथ-साथ संबंधित शैक्षिक विचारक के जीवन एवं कार्य का संक्षिप्त ब्यौरा होगा तथा खंड दो में वक्ता की संक्षिप्त पृष्ठभूमि के साथ पूरा व्याख्यान होगा।

मार्जरी साइक्स स्मृति व्याख्यानमाला की कड़ी के रूप में सुश्री मेधा पाटकर का 'समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति' विषय पर व्याख्यान क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, को आयोजित किया गया। संस्थान के विस्तार शिक्षा विभाग, जिसके अध्यक्ष डॉ. नगेंद्र सिंह हैं, के तत्वाधान में संस्थान के संकाय सदस्यों, कर्मचारियों और विद्यार्थियों के सामूहिक योगदान से यह आयोजन संभव और इतना सफल हो पाया। संस्थान के निम्नलिखित अधिकारियों/कर्मचारियों ने कार्यक्रम के सफल आयोजन में अपने सक्रिय योगदान के साथ-साथ सुश्री पाटकर के व्याख्यान की रिकार्डिंग को हिंदी में टंकित कर अंतिम रूप प्रदान करने में अपना विशेष योगदान दिया।

1. डॉ. सरयुग यादव, प्रवाचक (अंग्रेज़ी)
2. डॉ. उषा शर्मा, प्रवाचक (शिक्षा)
3. डॉ. रामनिवास, वरिष्ठ प्रवक्ता (हिंदी)
4. डॉ. एस.वी. शर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (भौतिकी)
5. श्री आयुष्मान गोस्वामी, प्रवक्ता (शिक्षा)
6. श्री अनिल, कुमार माहेश्वरी, आशुलिपिक, प्राचार्य सचिवालय

मैं आर.आई., अजमेर के सहयोगियों को विशेष धन्यवाद देती हूँ।

इस पांडुलिपि को अंतिम रूप देने में मैं जूनियर प्रोजेक्ट फैलो सुश्री कॉन्सम डायना के योगदान का भी विशेष उल्लेख करना चाहती हूँ।

हमें आशा है कि ये सभी व्याख्यान मालाएँ हमारे श्रोताओं तथा आम जनता के लिए उपयोगी होंगी।

अनुपम आहुजा
संयोजक

खण्ड 1

मार्जरी साइक्स
शिक्षा – सादगी, सौंदर्य और समानता के लिए

अनिल सेठी

सार

मार्जरी साइक्स (1905-1995) ने कई वर्षों तक महात्मा गाँधी और रविन्द्र नाथ ठाकुर के साथ एक अध्यापिका की हैसियत से काम किया। उन्होंने इन दोनों के शिक्षा संबंधी विचारों का सफलतापूर्वक समावेश किया। साइक्स जन्म से ब्रिटिश थीं। 1928 ई. में वे भारत आईं, 1990 के दशक तक यहाँ रहीं और उन्होंने सेवाग्राम और शान्तिनिकेतन समेत कई जगहों पर पढ़ाया। अपने मार्गदर्शकों की तरह साइक्स 'स्कूली पढ़ाई' और 'शिक्षा' में स्पष्ट अंतर करती थीं। वे यह भी मानती थीं कि किसी भी बुद्धिमान अध्यापक को यह जानना चाहिए कि कब बच्चों को अपनी मनमानी करने के लिए अलग छोड़ दिया जाए और कब अध्यापक पीछे हट जाए ताकि उनकी गतिविधि में दखल दिए बिना उन्हें समझ सके। साइक्स के शैक्षिक विचार, चिंतन और काम की कई धाराओं से निकले पर अंततः उनकी चेष्टा थी–सादगी, सौंदर्य और समानता की ओर ले जाने वाली शिक्षा का प्रवर्तन।

मार्जरी साइक्स (1905-1995) उन विदेशियों में से थीं जिन्होंने भारतीयता को अपनाना तय किया था क्योंकि भारत उन्हें असाधारण रूप से लुभाता था। इस सम्मोहन का अनुभव उन्हें पहले पहल हमारे स्वतंत्रता संग्राम के कुछ शिखर व्यक्तित्वों के जीवन और कृतित्व के माध्यम से हुआ। साइक्स जन्म से ब्रिटिश

---

* अनिल सेठी, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली में इतिहास के प्रोफ़ेसर हैं।

थीं। वे चेन्नई के बेंटिक गर्ल्स हाईस्कूल में पढ़ाने के लिए 1928 के शरद में भारत आईं। 1990 के दशक तक वे यहीं रहीं और इस दौरान वे गाँधीजी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और सी.एफ.ऐण्ड्रयूज़ जैसे व्यक्तित्वों तथा विभिन्न ईसाई परंपराओं – विशेषकर क्वेकर[1] परंपरा से प्रेरित अनेक तरह के विचारों, गतिविधियों और परियोजनाओं में लीन रहीं।

वृद्धावस्था में भी साइक्स सक्रिय और प्रभावी थीं। उन्होंने अपने जीवन का चित्रांकन एक विराट फलक पर किया। आध्यात्मिकता, सादगी, प्रकृति से जुड़ाव, पैदल सैर, पर्वतारोहण, दस्तकारी, भाषाएँ, नाटक, दर्शनशास्त्र, लेखन, ग्राम सुधार, शांति आंदोलन, राजनय तथा समझौता वार्ता, क्वेकर गतिविधियाँ, अपने मार्गदर्शकों के विचार--- दिन रात वे इन्हीं सब में रमी रहती थीं। इन सभी से वे कुछ न कुछ सीखने और लोगों को भी इनके बारे में जानकारी देने की कोशिश करती थीं। इसलिए उनके शिक्षा संबंधी विचारों ने इनमें से अनेक अभिरुचियों से बहुत कुछ ग्रहण किया है, पर अंततः उनकी चेष्टा थी -सादगी, सौंदर्य और समानता की ओर ले जाने वाली शिक्षा का प्रवर्तन।

उनका जन्म यार्कशायर के एक कम साधन संपन्न परिवार में हुआ था। उनके पिता कोयला खानों के इलाके के गरीब देहाती स्कूलों में हेडमास्टरी करते थे। मार्जरी तथा उनके दो भाई-बहनों का पालन-पोषण अपेक्षाकृत गरीबी की स्थिति में हुआ था मगर साथ ही उन्हें मितव्ययिता, स्वच्छता और धर्मपरायणता के संस्कार भी मिले थे। उनकी स्कूली शिक्षा हडर्सफ़ील्ड इलाके के स्थानीय स्कूलों में हुई थी पर कॉलेज स्तर पर अंग्रेज़ी के अध्ययन के लिए उन्हें छात्रवृत्ति मिली और वे केम्ब्रिज के न्यून्हम कॉलेज में दाखिला ले सकीं। कॉलेज की पढ़ाई के दौरान वे अक्सर अपने पिता के साथ उनकी परियोजनाओं पर काम किया करती थीं। उनके पिता मशीनों के व्यावहारिक मॉडलों के डिज़ाइन बनाने की कोशिश करते थे जो इतने आसान हों कि स्कूलों के बच्चे उन्हें खुद बना और चला सकें और जिनके ज़रिए वे दैनिक जीवन में काम आने वाली मशीनों के

1. क्वेकर–यह मत ईसाई धर्म में से उभरा एक आंदोलन है जिसमें शांति के सिद्धांतों पर बल रहता है। क्वेकर लोग औपचारिक सिद्धांतों, धर्म संस्कारों तथा दीक्षित पादरियों की परंपरा का पालन नहीं करते और उनकी आस्था स्वानुभव की आंतरिक सत्ता में होती है। क्वेकर लोग आध्यात्मिक समानता पर बल देते थे, इसलिए सामाजिक न्याय के प्रति वे संवेदनशील होते थे। भारत की राष्ट्रीय भावना के प्रति उन्हें सहानुभूति थी और उनमें अनेक जन महात्मा गाँधी के विश्वस्त मित्र थे। साइक्स इस आंदोलन तथा भारत में इसके कार्यों से इतनी प्रभावित थीं कि उन्होंने इन पर एक किताब भी लिखी - *क्वेकर्स इन इंडिया : अ फॉरगॉटन सेंचुरी* (लंदन 1980)।

बारे में भी जानकारी हासिल कर सकें। वे बच्चों के लिए विनोद भाव, सुंदरता या रहस्य भाव के आधार पर चुनी हुई कविताओं की पुस्तिकाएँ निकाला करते थे। वे इतिहास का पुनर्कथन इस तरीके से करते थे जो पाठकों की मानवीय सहानुभूति को जाग्रत करे। इन सब कामों में वे मार्जरी को भी शामिल करते थे जो बड़े उत्साह से हाथ से बनी किताबों की सिलाई किया करती थीं। उन्हें यह काम कभी नीरस बोझ-सा नहीं लगा[2]।

साइक्स ने केंब्रिज में अंग्रेज़ी का ट्राइपॉस (ऑनर्स डिग्री) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। इसके लिए उन्होंने विलियम ब्लेक पर एक लघु शोध प्रबंध लिखा था। वे आसानी से अंग्रेज़ी विषय में अपनी उच्चतर शिक्षा जारी रख सकती थीं, लेकिन अपने पिता के कार्यों के प्रति आकर्षण के कारण उन्होंने स्कूलों में अध्यापन को चुना। उन्होंने अध्यापन का प्रशिक्षण लेते हुए केंब्रिज में एक वर्ष और बिताया जिसके समापन पर उन्होंने अफ़्रीका और एशिया में शिक्षण के अवसरों की तलाश शुरू की। जब उन्हें मद्रास में लंदन मिशनरी सोसाइटी द्वारा संचालित बेंटिक हाईस्कूल में काम करने का प्रस्ताव मिला तो उन्होंने सहर्ष उसे स्वीकार कर लिया।

बेंटिक स्कूल में साइक्स को अपने पालन-पोषण के तरीके और पूर्व प्रशिक्षण का अच्छा लाभ मिला। अपने माता-पिता को देखकर वे समझ चुकी थीं कि बच्चों को अन्वेषण और उपलब्धि से, मौज-मस्ती और साहसिक कार्यों से, कल्पना और करुणा से किस प्रकार उत्साहपूर्ण प्रेरणा मिलती है। उनके पिता कभी भी व्यक्तियों, सामाजिक समूहों और राष्ट्रों को किसी रूढ़िवादी रूपरेखा में रखकर नहीं देखते-दिखाते थे। उन्होंने बेटी को यह भी सिखाया था कि 'अपना कर्तव्य निजी आकांक्षाओं से प्रभावित हुए बिना निभाना चाहिए ... केवल एक ही बात मायने रखती है ..... नि:स्वार्थी होकर सीखना[3]। आगे चलकर भारत में मार्जरी को 'निष्काम कर्म' की अवधारणा के रूप में इस बारे में और सीखना था। इसके अतिरिक्त केंब्रिज में उनके अध्यापकों ने उन्हें अंतर्राष्ट्रीय शांति और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में किसी न किसी रूप में योगदान करने की प्रेरणा दी

2. साइक्स के जीवन और कृतित्व के बारे में ब्यौरे या तो स्वयं उनके लेखन से लिए गए हैं, या मार्था डार्ट की *मार्जरी साइक्स-क्वेकर गाँधियन* (लंदन, तिथि अज्ञात) से। डार्ट की पुस्तक ही शायद मार्जरी साइक्स की एकमात्र जीवनी है। मैंने इसके इलेक्ट्रॉनिक संस्करण का इस्तेमाल किया है। www.arvindguptatoys.com पर 'बुक्स ऑन एजुकेशन' लिंक के ज़रिए यह पुस्तक उपलब्ध है। अरविंद गुप्ता प्रसिद्ध विज्ञान शिक्षाविद हैं। वे बच्चों के लिए शैक्षिक खिलौने भी बनाते हैं।

3. मार्था डार्ट, मार्जरी साइक्स, क्वेकर गाँधियन, पृ.8

थी। उनमें से बहुत से लोग इसे ईसा मसीह का संदेश मानते थे जिसे युवा दिमागों तक पहुँचाना था, और वह ऐसी शिक्षा के ज़रिए जो उन्हें 'विश्व के स्तर पर सोचना लेकिन स्थानीय स्तर पर काम करना' सिखाए। जो भी हो, नौ वर्ष की कच्ची उम्र में भी मार्जरी को युद्ध से नफ़रत थी। यह बात उन्हें हमेशा-हमेशा याद रहती थी कि जब प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हुआ तो किस प्रकार 'माहौल में महाविनाश का गहन आभास छाया रहता था', और यह कि युद्धजनित वैर ने कैसे एक प्रिय जर्मन शिक्षिका को अचानक ही 'विदेशी शत्रु' में बदल दिया था।[4]

सन् 1928 में बेंटिक एक अपेक्षाकृत छोटा स्कूल (किंडरगार्टन से अंतिम कक्षा तक जिसमें 350 से भी कम बच्चे थे) और घनिष्ठ रिश्तों में बँधा समूह था। इसमें एक छात्रावास भी था हालाँकि सारे छात्र इसमें नहीं रहते थे। सभी अध्यापक और छात्र एक दूसरे को पहचानते थे 'और एक बड़े परिवार की तरह एक दूसरे का ख्याल रखते थे'। चेन्नई की जलवायु को देखते हुए स्कूल में कम से कम फ़र्नीचर रखा जाता था और इसके सदस्य कभी-कभार ही चप्पल पहनते थे। वे नंगे पैर चलते-फिरते और फ़र्श पर बिछी चटाइयों पर सोते थे। छात्रावास में हर बच्चे के कपड़े और निजी वस्तुएँ एक छोटे से बक्स में ही समा जाती थीं। अलग-अलग धर्म और जातियों के बच्चों को बराबरी के दर्जे पर दाखिला दिया जाता था और छात्रावास के संवासियों की जाति कुछ भी हो, वे सभी एक ही रसोई में बना हुआ एक ही खाना खाते थे। ऐसा भी होता ही रहता था कि ब्राह्मण छात्र 'नीची जात' के लोगों की जूठी पतलें उठाते थे या उनके जूठे बर्तन माँजते थे।

प्रिंसिपल की हैसियत से मार्जरी साइक्स ने प्रतियोगिताओं और पुरस्कारों तथा 'उनसे भड़कने वाली स्वकेंद्रित प्रतिद्वंद्विता'[5] पर रोक लगा दी। उन्होंने सहयोग के मूल्यों पर बल दिया और इस तरह की व्यवस्था स्थापित की जिसमें तेज़ छात्रों को पढ़ाई में मंदबुद्धि छात्रों की मदद करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था - 'वयस्कों की तुलना में वे इसे कहीं अधिक प्रभावी ढंग से करते थे।'[6] शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों की योजना कुछ एक सितारों को श्रेष्ठ प्रदर्शन करके पुरस्कार जीतने की खातिर प्रशिक्षित करने के लिए नहीं 'बल्कि हर बच्चे के स्वास्थ्य तथा कौशल में सुधार लाने के लिए'[7] बनाई जाती थी।

बेंटिक तथा साइक्स 'पाठ्य विषय' तथा 'पाठ्येत्तर गतिविधियों में कोई अंतर

---

4. वही, पृ. 9
5. जहाँगीर पी.पटेल तथा मार्जरी साइक्स, *गाँधी : हिज़ गिफ्ट ऑफ़ द फ़ाइट* (गोवा 1987) पृ. 43।
6. वही।

नहीं करते थे, जो अंतर बहुत-से भारतीय स्कूल हमेशा से रखते आए हैं। (सन् 2005 के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के ढाँचे का उद्देश्य इस अंतर को समाप्त करना है।) उदाहरण के लिए उस स्कूल में अंग्रेज़ी और संगीत साथ-साथ पढ़ाए जाते थे। झाड़ू लगाना, इमारत की सफ़ाई, बागबानी आदि का उतना ही महत्त्व था जितना लिखना, पढ़ना, गणित आदि सीखने का। सफ़ाई, बागबानी आदि को शिक्षा की केंद्रीय चिंता माना जाता था। यह बात साइक्स ने जितनी स्वयं अपनी शिक्षा-दीक्षा से सीखी थी, उतनी ही गाँधी तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर से।

इस सोच को केवल बेंटिक ही नहीं बल्कि हर उस जगह लागू किया गया जहाँ-जहाँ उन्होंने पढ़ाया था। गाँधीजी ने 1937 में जब अपने शिक्षा संबंधी कार्यक्रम की प्रथम सार्वजनिक घोषणा की थी, तब इसी सोच के कारण उसे लेकर मार्जरी इतनी उत्साहित हो उठी थीं। गाँधीजी की नयी तालीम के रूप में समर्पित और कार्यान्वित इन विचारों का अन्यत्र विस्तृत विश्लेषण किया गया है।[8] यहाँ इतना ही कह देना काफ़ी है कि गाँधीजी शिक्षा कार्य में दैनिक जीवन तथा कार्यों के संसाधानों के इस्तेमाल के आग्रही थे। शिक्षा का लक्ष्य जीवन को समझना और जिस रूप में वह सामने आए, उसी रूप में उसका सामना करना है। लेकिन शिक्षाभ्यास को भी स्वयं जीवन के अंदर से होकर ही संरचित भी किया जाना था। इस गाँधीवादी प्रतिमान का आशय था कि शिक्षार्थी स्वयं अपने अस्तित्व की स्थितियों और अपने समाज से सक्रिय रूप से जुड़ा रहे ताकि वह अतिश्रम और शोषण से अपनी मुक्ति की राह तलाश सके। जैसाकि गाँधीजी ज़ोर देकर कहते थे, ' शिक्षा ही सच्ची आज़ादी देती है'[9] लेकिन यह तभी संभव है जब यह 'बच्चों या बड़ों के देह, मन और आत्मा में जो भी सर्वश्रेष्ठ है उसे समग्र रूप से बाहर ला सके'[10]। 31 जुलाई 1937 के *हरिजन* में गाँधीजी ने इस विषय

---

7. वही, पृ. 44।
8. उदाहरण के लिए दे. मार्जरी साइक्स, द *स्टोरी ऑफ नई तालीम–फिफ्टी इयर्स ऑफ एजुकेशन एट सेवाग्राम; 1937-1987* (सेवाग्राम, 1987); कृष्ण कुमार, 'लिसनिंग टु गाँधी'- रजनी कुमार, अनिल सेठी और शालिनी सिक्का (संपादक), *स्कूल, सोसाइटी, नेशन –पॉपुलर एसेज़ इन एजुकेशन* (दिल्ली, 2005) में संकलित; जी. रामानाथन, एजुकेशन फ्रॉम ड्यूई टु गाँधी – द *थ्योरी ऑफ बेसिक एजुकेशन* (मुंबई, 1962) ; सीतारमैया, *बेसिक एजुकेशन – द नीड ऑफ टुडे* (वर्धा, 1952) ; और अनिल सेठी, 'एजुकेशन फॉर लाइफ़, थ्रू लाइफ़ – अ गाँधियन पैराडाइम', क्रिस्टोफ़र विंच के *फर्स्ट महात्मा गाँधी मेमोरियल लेक्चर* (नयी दिल्ली 2007) में।
9. जे.डी.सेठी द्वारा *गाँधी टुडे* (दिल्ली 1978) में प्रकाशित लेख 'अ गाँधियन क्रिटिक ऑफ मॉडर्न इंडियन एजुकेशन इन रिलेशन टु इकॉनॉमिक डेवलपमेंट' में उद्धृत, पृ. 126
10. *हरिजन*, 31 जुलाई 1937

में जो एक छोटा-सा अनुच्छेद प्रकाशित किया था उसने साइक्स को अंदर तक झकझोर दिया – 'उन गिने-चुने वाक्यों ने मेरे दिमाग से बाकी सब कुछ निकाल फेंका। मैं उद्दीप्त हो उठी। मैं उन्हें बार-बार पढ़ती रही और मुझे अब भी स्पष्ट रूप से शब्दशः याद है कि मेरे दिमाग में कौन-सी बात आई थी – ''आखिर अब ऐसा कोई है जो शिक्षा के बारे में सचमुच समझदारी से कुछ कह रहा है।'' मैं उत्सुकता से *हरिजन* के आगामी अंकों की प्रतीक्षा करने लगी और गाँधीजी के प्रस्ताव से जो विवाद उठे थे उनका अध्ययन करती रही।'[11]

सन् 1939 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मार्जरी साइक्स को 'अंग्रेज़ी संस्कृति की प्रतिनिधि'[12] के रूप में शांतिनिकेतन में पढ़ाने को बुलाया। यह एक दुर्लभ अवसर था। इससे साइक्स को न केवल रवीन्द्रनाथ के शिक्षा तथा सामुदायिक सहजीवन के प्रयोगों को निकट से देखने का अवसर मिला, बल्कि वे इस बात का भी अध्ययन कर सकीं कि गाँधीवादी पद्धति से उसका कहाँ मेल है। रवीन्द्रनाथ तथा गाँधी के बीच अनेक संपर्क सूत्र थे और गाँव और शांतिनिकेतन के बीच आवागमन बना रहता था। साइक्स को तमिल तथा हिंदी का तो अच्छा ज्ञान था ही, अब उन्होंने शीघ्र ही बांग्ला भी सीख ली और बड़ी सहजता से शांतिनिकेतन के सांस्कृतिक तथा बौद्धिक जीवन में शामिल हो गई जिसमें थे - फूल और भित्तिचित्र, वस्त्र बुनाई और काष्ठशिल्प, कविता और संगीत, नृत्य और नाटक तथा धार्मिक संवाद की स्वतंत्रता। छात्राओं तथा ईसाई विद्यार्थियों के लिए उनका घर विशेष आकर्षण का केंद्र सिद्ध हुआ। ईसाई विद्यार्थी धार्मिक उलझनों पर विचार विमर्श के लिए या क्वेकर पत्रिका द फ्रेंड पढ़ने के लिए आया करते थे तो छात्राएँ एक अधिक जानकार तथा अनुभवी, पर साथ ही अत्यंत सुहृद महिला से व्यक्तिगत सलाह तथा प्रेरणा लेने आती थीं। बांग्ला भाषा पर साइक्स का क्रमशः इतना अधिकार हो गया था कि कवि ने उनसे अपनी कुछ रचनाओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद करने का आग्रह तक किया।

बेंटिक तथा शांतिनिकेतन के अतिरिक्त मार्जरी साइक्स ने चेन्नई के वीमॅन्स क्रिश्चियन कॉलेज, सेवाग्राम तथा कई अन्य संस्थानों में भी अध्यापन किया था। उनके कार्य, उनकी लिखी पुस्तकों तथा उनके बारे में इधर-उधर बिखरे लेखन

---

11. मार्था डार्ट, *मार्जरी साइक्स – क्वेकर गाँधियन*, पृ. 22
12. मार्था डार्ट, 'मार्जरी साइक्स – 1905-1995' जहाँगीर पी.पटेल तथा मार्जरी साइक्स, *गाँधी – हिज़ गिफ्ट ऑफ़ द फ़ाइट* (गोआ 1987) पृ. 211

से स्पष्ट समझ में आता है कि वे रवीन्द्रनाथ तथा गाँधी की विश्वदृष्टियों को समझना तथा संश्लेशित करना चाहती थीं, विशेषकर उनके शिक्षा संबंधी परिप्रेक्ष्य को। उन्हें यह आंतरिक उत्साह तथा आविष्कार की यात्रा लगती थी। चूँकि यह यात्रा साइक्स की शिक्षा संबंधी दृष्टि को भी उजागर करती है इसलिए इससे फिर एक बार गुज़रना श्रेयस्कर ही होगा।

साइक्स को 'वर्तमान के महातम पुरुषों में से इन दो'[13] के विचारों में कई अंतर दिखाई दिए, पर साथ ही कई समानताएँ भी दिखाई दीं जो आमतौर पर जीवनीकारों और इतिहासकारों की नज़र में नहीं आतीं। साइक्स के अनुसार इन दोनों की पृष्ठभूमि, मिजाज़ और उन बिंदुओं में अंतर था जिन पर वे बल देते थे। किंतु इनकी मनोवृत्ति और उद्देश्य में साम्य था। रवीन्द्रनाथ कृष्ण थे - कलाकार, सौंदर्य में निमग्न, जबकि गाँधीजी राम थे - योद्धा, ज़रूरतमंदों की सहायता को उजागर करना फिर भी दोनों में एक-दूसरे का भी कोई तत्व था।

साइक्स का तर्क था कि दोनों ही अपने-अपने तरीके से समान लक्ष्यों के लिए काम कर रहे थे – आत्मनिर्भरता की गरिमा और उत्तरदायित्वपूर्ण स्वतंत्रता का आचरण। दोनों का महास्वप्न एक-सा ही था – मुक्त, निर्भय तथा पुनरुजीवित मानवता। उपनिषद्‌ों की परंपरा में वे बाह्य उपलब्धियों को तब तक निरर्थक मानते थे जब तक कि वे आंतरिक स्वाधीनता और आनंद की उपलब्धि में मानव की, स्थानीय समुदायों की, और संपूर्ण समाज की सहायता न करें। वे प्रायः *ईशोपनिषद्* की एक ऋचा पर लौटा करते थे जिससे साइक्स भी बहुत प्रभावित थीं –

यह संपूर्ण विश्व परिधान है ईश्वर का
त्यागकर इसका भोग करो
पुनः ग्रहण करो ईश्वर के वरदान के रूप में।[14]

गाँधी और रवीन्द्रनाथ भोग और त्याग में द्वंद्व का संबंध मानते थे। प्रकाश और अंधकार की भाँति वे विरोधी पूरक थे जो एक-दूसरे को अर्थ देते थे। इन दोनों ही पुरुषों के जीवन का सिद्धांत वाक्य था 'त्यागकर भोग करो'[15]। यह संसार छोड़कर हिमालय की गुफ़ाओं में जा बसनेवाला त्याग नहीं था। इसके विपरीत

---

13. मार्था डार्ट, *मार्जरी साइक्स – क्वेकर गाँधियन*, पृ. 23
14. जहाँगीर पी.पटेल तथा मार्जरी साइक्स, *गाँधी – हिज़ गिफ्ट ऑफ़ द फ़ाइट* (गोआ 1987) पृ. 62
15. वही, पृ. 63

इसका अर्थ था, 'मानव व्यापारों में एक अनासक्त और विलक्षण लिप्तता' [16] और इस कारण ये दोनों अपने कार्य और कला के माध्यम से समाज में लिप्त रहे, संस्थाएँ और आंदोलन संचालित किए और इन्होंने संवाद, वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श आरंभ किए।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा गाँधीजी के शिक्षा संबंधी लक्ष्य और उनकी पद्धतियाँ इस विश्वदृष्टि से गहरे में अनुप्राणित थीं। वे बच्चों से प्यार करते थे और स्वयं 'चिर शिशु' थे। वे एक समग्र, समन्वित, बहुआयामी शिक्षा का स्वप्न देखते थे जिसमें हर बच्चे की वैयक्तिकता तथा प्रतिभा को पहचाना जाए और शिक्षा के एक मुक्त, आनंदमय वातावरण में उसे इस वैयक्तिकता तथा प्रतिभा को पूर्ण अभिव्यक्ति देने का अवसर मिले। उनका दृढ़ मत था कि शिक्षा को अत्याचार तथा अस्वाधीनता दूर करने में सहायक होना चाहिए। इसे हमें इतना समर्थ बनाना चाहिए कि हम सत्ता की केंद्रिकता तथा शोषण का प्रतिरोध कर सकें। इस काम को खेल की तरह लेना चाहिए और इसका ध्यान रचनात्मक कार्य पर केंद्रित होना चाहिए। इसे दैनिक जीवन के तत्वों तथा कार्यों का शिक्षण के संसाधनों के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए। इस प्रकार कपास की खेती या बाउल संगीत शिक्षण-अधिगम की अनेक गतिविधियों के केंद्र बन सकते हैं - वह विज्ञान के क्षेत्र में हो, या भूगोल, इतिहास और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में, या कला, शिल्प या साहित्य के क्षेत्र में। शिक्षा को जहाँ वृहत्तर विश्व में प्रवेश की अनेक राहें खोलनी चाहिए, वहीं इसकी जड़ें स्थानीय आवश्यकताओं और संस्कृति में होनी चाहिए और कम से कम हाईस्कूल तक इसका माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। इस प्रकार साइक्स की दृष्टि में मूल तत्वों की दृष्टि से गाँव तथा शांतिनिकेतन उतने दूर नहीं थे जितना उन्हें समझा जाता है।

स्कूल और कॉलेज में सक्रिय अध्यापक के रूप में साइक्स इन विचारों को जीती रहीं। शांतिनिकेतन, सेवाग्राम तथा भारत के अन्य भी कई भिन्न-भिन्न इलाकों में इन्हें लागू करके वे इन्हें लगातार धार देती रहीं। अपने मार्गदर्शकों की ही तरह वे भी 'शिक्षा' तथा 'स्कूली पढ़ाई' में स्पष्ट अंतर करती थीं। वे इन दो शब्दों के आशय में इतना अंतर करती थीं मानो 'शिक्षा' का अर्थ दरअसल 'स्कूल से दूर जाना' किया जा सकता हो। साइक्स समझाती हैं कि शिक्षा (education) का शाब्दिक अर्थ ही 'बाहर ले चलना' है।

16. वही, पृ. 64

मेरे मन में चित्र उभरता है कि कोई किसी बच्चे के हाथ को हौले से थामकर बच्चे के अपने प्राकृतिक मनोवेगों से सहयोग करता हुआ नये विकास और नए उद्यम को प्रोत्साहित करते हुए उसके साथ-साथ उसी की स्वाभाविक रफ़्तार में चल रहा है। पर इसके विपरीत हम 'स्कूली पढ़ाई' शब्द का प्रयोग कुछ इस आशय में करते हैं मानो किसी का ऐसे काम के लिए अनुकूलन किया जा रहा हो जो वह स्वभावत: नहीं करता – उदाहरण के लिए बैले नृत्य की कुछ भंगिमाएँ और गतियाँ। मेरा यह दावा नहीं है कि शिक्षा और स्कूली पढ़ाई परस्पर विरोधी हैं (मैं यह नहीं कह रही हूँ कि दोनों साथ नहीं चल सकते। पर यह मैं कह रही हूँ वे भिन्न हैं और हम लोगों को इस भिन्नता को पहचानना चाहिए।[17]

साइक्स का दृढ़ विश्वास था कि अध्यापकों की पहली चिंता शिक्षा होनी चाहिए, स्कूली पढ़ाई नहीं। उन्होंने अध्यापक की तुलना माली (किंडरगार्टन का अर्थ ही है बच्चों की बगिया) या नर्स (स्कूल नर्सरियाँ/पौधशालाएँ ही तो हैं।) से की है जिनकी ज़िम्मेदारी बच्चों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करना है। जिस प्रकार कोई कुशल माली अपने पौधों की या समझदार नर्स अपने रोगियों की देखभाल करते हैं उसी प्रकार बुद्धिमान अध्यापक को भी जानना चाहिए कि कब बच्चों को स्वयं उनके साथ छोड़ दिया जाए ताकि वे अपने विकास को जारी रख सकें, 'अपना मनभाता कर सकें' और अध्यापक पीछे हटकर केवल उन पर नज़र रखते रहें, 'उन्हें समझने के ख़्याल से, दखल देने के लिए नहीं'।[18] मगर जहाँ बच्चों को उनके काम में सहज सुविधा देने के लिए अध्यापकों को पीछे हट जाना चाहिए, वहीं उन्हें प्रश्न करने की आदत को सँवारने में विद्यार्थियों की मदद भी करनी चाहिए। मानवों में यह आदत तो प्रकृति से ही आती है। अध्यापकों को स्वयं में भी जिज्ञासा का उत्साह जगाना चाहिए। बच्चों को समस्याएँ उठाने और समाधान ढूँढ़ने में मज़ा आता है और अध्यापकों को यह बात उनसे सीखनी चाहिए।

शिक्षक के तौर पर हम क्या बच्चों के सहज प्रश्नों का स्वागत करते हैं? अपने जीवन और कृतित्व के माध्यम से मार्जरी साइक्स ने इस बात पर फिर से बल दिया कि शिक्षा का अर्थ है, 'जो चीज़ें हमारे सामान्य स्वीकृत पैटर्न में नहीं

17. कृष्ण कुमार (संपा.) *डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन इन इंडिया* (नयी दिल्ली 1993), पृ. 24 में मार्जरी साइक्स का बीज भाषण
18. वही, पृ. 25

बैठतीं'[19] उनके बारे में प्रश्न, समस्याएँ और संदेह उठाए जाएँ। शिक्षा बेजान तथ्यों का ढेर भर नहीं है; बल्कि हमें इसे 'चुनौती भरे प्रश्नों की शृंखला के प्रतिसाद'[20] के रूप में देखना चाहिए। अन्वेषण, बच्चों, लोगों, अनासक्त समाजलिप्तता, सौंदर्य आदि के प्रति उनके प्रेम ने और सबसे बढ़कर समानुभूति और मैत्री के उनके गुणों ने उन्हें देश के सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों में स्थान दिलाया था। इसलिए शिक्षा संबंधी किसी भी चिंतन में उनका नाम हमेशा अनायास ही आ जाता है।

(अनु. कुसुम बाँठिया)

19. वही, पृ. 27
20. वही, पृ. 27

खण्ड 2

समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति

मेधा पाटकर

भारतीय समाज में शिक्षा, उसकी विषय-वस्तु, विस्तृत उद्देश्य, औपचारिक बनाम अनौपचारिक स्वरूप एवं इससे जुड़े कई अन्य पक्षों पर निरंतर विचार-विमर्श होता रहा है। इस विचार-विमर्श में शिक्षा से जुड़ीं औपचारिक पद्धतियों, शिक्षण संस्थाओं के वातावरण, तयशुदा पाठ्यक्रम एवं उनके सीमित प्रभाव वाले आचार-व्यवहार को इस व्यवस्था से इतर लोगों ने अपने विचारों, अनुभवों और सफल व्यावहारिक प्रयोगों से चुनौती दी है। उनका मत है कि शिक्षा एक व्यापक विषय है और इसे जीवन से अलग करके नहीं बल्कि जीवन पद्धति में फैली विविधताओं का समावेश कर इसे बहुपयोगी बनाया जा सकता है। इससे शिक्षा में सहभागिता को भी बढ़ाया जा सकता है। विविधताओं के समावेश से काफ़ी हद तक समता के अधिकार की पूर्ति भी हो सकती है जो कि हमारे संविधान के उद्देश्यों में भी प्रतिध्वनित होती है। शिक्षा में लोकतंत्र के विकास को प्रोत्साहित करने हेतु गाँव, समाज और राज्य के स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिए जिससे शिक्षा में 'नवनिर्माण' का आंदोलन शुरू होने तक की संभावना बने। राज्य स्तर के प्रयासों में रह गई कमियों की तरफ़ भी इशारा करने में भी ये शिक्षाशास्त्री नहीं चूकते। इसके अलावा ये शिक्षा के वैकल्पिक स्वरूप में काम में लगी संस्थाओं के सफल प्रयोगों के अनुकरण की माँग भी करते हैं। वैश्वीकरण के बदलते परिदृश्य में शासन अर्थतंत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

शिक्षा में बाज़ारीकरण की तीव्र घुसपैठ के कई उदाहरण सामने रखते हुए लेखिका ने स्पष्ट किया है कि अब बाज़ारीकरण का अपना छद्म वेश धीरे-धीरे

अपने लाभ कमाने के उद्देश्यों को पूरा करता जा रहा है। कई स्थानों पर शासन भी सहायक की भूमिका में सामने आया है। लेखिका का मत है कि बड़ी पूँजी द्वारा यह मात्र एक हस्तक्षेप नहीं बल्कि उनका इस क्षेत्र में प्रवेश, कब्ज़ा और राजनीतिक हस्तक्षेप के उद्देश्यों को समझना अपने आप में एक चुनौती है।

अभिप्राय यह है कि अपने इन उद्देश्यों को पूरा करने हेतु पूँजी हर संभव रास्ते तलाशती है क्योंकि अपने निहित स्वार्थों को पूरा करना ही उसका अंतिम उद्देश्य होता है। लेखिका का मत है कि जीवनोपयोगी शिक्षा की प्राप्ति हेतु सक्रिय सहभागिता हेतु जनशक्ति को भी जुटाना होगा। वहीं दूसरी ओर लेखिका शिक्षा में व्यापक बदलाव की बात करते हुए इस ओर ध्यान दिलाती हैं कि शिक्षा प्रणाली को हर एक तक पहुँचाने के लिए उसमें खुलापन लाना होगा। इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि शिक्षा में आधुनिक समाज के बदलते आग्रहों को भी स्वीकार करना ही होगा। मेधा जी ने राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सद्भाव की शिक्षा की विस्तृत रूपरेखा को भी इस आलेख में प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि औपचारिक ही नहीं अनौपचारिक शिक्षा भी लोकतंत्र में विचारों की अभिव्यक्ति का एक अच्छा माध्यम बन सकती है। इसके अतिरिक्त वे सार्थक उद्देश्यों और व्यापक दायरों को जन-जन तक पहुँचाने हेतु किए जा रहे प्रयोगों की ओर भी ध्यान आकर्षित करते हुए लचीलापन अपनाने का आग्रह करती हैं। संचार माध्यमों की सहयोगी भूमिका को रेखांकित करते हुए वे वैकल्पिक माध्यमों को अपनाने पर ज़ोर देती है। इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण बात माध्यमों की भाषा की है। कहने का अर्थ यह है कि शिक्षा का परिवेश जीवनदृष्टि पर आधारित शिक्षा को विविधता के समावेश के साथ प्रस्तुत करके ही समाज में लोकतांत्रिक और जनवादी शिक्षा विकसित की जा सकती है। जब तक लोगों को अपनी भाषा में अपनी बात कहने के अवसर प्राप्त नहीं होंगे परिवर्तन को स्वीकारने के आग्रहों में अंतर्विरोध भी खत्म नहीं होंगे। सामाजिक शिक्षा की सबसे बड़ी चुनौती राजनीति की वर्तमान परिस्थितियाँ हैं। लेखिका ने इन सभी चुनौतियों और उनसे जुड़े समाधानों को संक्षेप में इस लेख के अंत में प्रस्तुत किया है।

शिक्षा एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जो केवल पुस्तकों-पाठ्यक्रमों या दीवारों के बीच बंधक बनकर नहीं रह सकती। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अपने मूल्य, आदर्श, नीति और रीति पहुँचाना, अपनी तकनीक और कुशलता का आदान प्रदान करना यदि 'शिक्षा' है तो यह प्रक्रिया आज के प्रत्येक समाज में जारी है। इसका संबंध सिर्फ औपचारिक संरचना, सरकारी योजना, नीति, नियम

और शासकीय सहायता से नहीं होता बल्कि यह समाज के इतिहास और भविष्य से होता है। समाज अपने प्राकृतिक परिवेश एवं सांस्कृतिक धरोहर से संबंधित तथ्यों को शिक्षा के रूप में संग्रहित करता है। समाज जो नए मूल्य, नए प्रतीक, नए रिश्ते या नया जीवनदर्शन आत्मसात करता है; या फिर बदलाव की चाहत रखता है, वह सब भी शिक्षा में प्रतिबिंबित होता है। इसीलिए शिक्षा के न केवल दायरे बदलते हैं बल्कि उसका मूलभाव भी काफ़ी हद तक बदलता रहता है।

भारत एक राष्ट्र है परंतु भारतीय समाज न केवल विविधताओं से बल्कि कई प्रकार की असमानताओं से परिपूर्ण है। ऐसे में शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से निकला पाठ्यक्रम नहीं हो सकती है। समाज प्रत्येक **कालखंड** में अपनी औपचारिक ही नहीं अनौपचारिक शिक्षा में भी बदलाव लाता रहता है। हर तबके की सोच में बुनियादी फ़र्क रहना स्वाभाविक है और उनके बदलाव की गति भी समान नहीं हो सकती। इस स्थिति में शिक्षा के स्वरूप, पद्धति, संरचना एवं संदेश को लचीला रखना बहुत ही ज़रूरी होता है लेकिन यदि शिक्षा में निहित मूल्यों, शिक्षण पद्धति एवं शिक्षा प्रसार कार्यक्रमों में समानता नहीं होगी तो राष्ट्र की अखंडता और एकात्मकता का आधार ही खतरे में पड़ सकता है। इस दोहरी चुनौती को समझते हुए हमें शिक्षा संबंधी अपनी भूमिका स्पष्ट करनी होगी।

विविधता का आधार–समता का अधिकार

हम सब जो जीने के अधिकार के लिए संघर्षरत हैं, शिक्षा को उसके व्यापक अर्थ में आत्मसात करते हैं। इसी वजह से हम शिक्षा के अधिकार के व्यापक स्वरूप को महत्वपूर्ण मानते हैं। जीवन में शिक्षा की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी रोटी कपड़ा और मकान की। मानवीय रिश्ते, संवाद और आदान-प्रदान से ही समाज बनता और बिखरता है। समाज की बनावट और जीवन संबंधी धारणाओं में शिक्षा प्रवाहमान है अतएव समाज और शिक्षा का अटूट संबंध कोई भी समझ सकता है। दुनिया की 16 प्रतिशत जनसंख्या के इस देश का जात-पातों में, मज़हबों में तथा भाषावार प्रांत जैसी बिखरी इकाइयों में बँधा होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसीलिए शिक्षा के अधिकार को इन भिन्नताओं के पार हासिल करना हमारे अनुसार शिक्षा का प्रथम उद्देश्य है। अतएव शिक्षा को सामाजीकरण की पहली कसौटी होनी चाहिए। महात्मा ज्योतिराव फुले ने हंटर कमीशन के वक्त भी 'ब्राह्मणों से बहुजन समाज का शिक्षा के मायने में अलगाव' की बात उजागर की थी। वह ब्रिटिश साम्राज्यकाल था लेकिन 'आरक्षण' के करीबन 6 दशक

बीतने के बाद भी जातियों में ही नहीं गाँव और शहर, खेती और उद्योग में भी बँटे हुए हमारे समाज में समान शिक्षा अर्थात् समता की ओर ले जाने वाली शिक्षा की प्राथमिकता न तो हमारे शासनकर्ता और न ही समाज के अधिकांश लोग समझते हैं। समाज जाति-वर्ग-लिंग के आधार पर अपना दायरा, परिवेश और अपनी आजीविका के ही साथ जुड़कर शिक्षा की अभिलाषा रखते हैं। इतना ही नहीं वे शिक्षा से विविधताओं का भंडार सुरक्षित रखने और आपसी वैरभाव या भेदभाव की लकीरें मिटाने के कार्य को कम महत्त्व देते हैं। हमें इससे उभरना है और समाज के हर तबके की शिक्षा की परिभाषा को, शिक्षा के अंतिम उद्देश्य को और उसकी शिक्षा पद्धति को समझना होगा। गृह-उद्योगों पर आश्रित समुदाय अपने बच्चे को मात्र परिवार के साथ ही नहीं बल्कि उसे वंशानुगत व्यवसाय के साथ जोड़कर ही सिखाना चाहेंगे न कि उसे घर से दूर भेजकर शिक्षा दिलवाने पर सहमत होंगे। खेती प्रधान समाज हो या वनजीवी, उनके बच्चों की सहभागिता केवल अर्थार्जन के लिए नहीं बल्कि ज़मीनी जीवनप्रणाली में उनके हिस्से के नाते विशेष स्थान रखती है। इस बात को समझे बिना इन श्रमजीवी समाजों की अगली पीढ़ी को आधुनिक शिक्षा के दायरे में लाना, यानि बाह्य ज्ञान के साथ शिक्षा की प्रक्रिया उन तक ले जाना, असंभव-सा है। हमारी पहुँच कुछ बढ़ी भी तो बच्चा कब अपना हाथ छुड़वाकर उससे निकलकर कब बाहर चला जाएगा इस बात का भरोसा नहीं है। यह एक रुचिकर खोज का विषय हो सकता है कि समाज की कोई भी आर्थिक-सामाजिक इकाई अपने अंदरूनी मतभेद के होते हुए भी शिक्षा का स्वरूप और विषयवस्तु ही नहीं बल्कि उसका जीवन से रिश्ता, किस पद्धति और माध्यम से स्थापित करती है।

मध्यप्रदेश और सतपुड़ा और विंध्य की पहाड़ियों के बीच स्थित आदिवासी गाँवों में नर्मदा नवनिर्माण अभियान एवं नर्मदा बचाओ आंदोलन हमारी 12 जीवनशालाओं की ओर संचालित हैं। ये वे गाँव हैं जहाँ के निवासी नर्मदा बचाओ 'कहते कहते, "गाँव बचाओ, जंगल ज़मीन बचाओ और देश बचाओ" तक पहुँच गए हैं और आज भी अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा खोकर अपनी अगली पीढ़ी जो कि उस प्रकार की औपचारिक शिक्षा लेने वाली पहली पीढ़ी है को पूरी ऊर्जा के साथ नयी ज़िंदगी देने की कोशिश जारी रखे हुए हैं। भील, भिलाला, राठवा, तडवी जनजाति के ये आदिवासी अभी भी अपने बच्चों को न केवल होली-दीवाली के नृत्य बल्कि पुरातन कहानियों के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक पूँजी पहुँचाने के लिए सतत प्रयासरत रहते हैं। 'गायना' ऐसा ही एक सुंदर माध्यम है। इसे रात भर

इंदल पूजा के साथ चलने वाला 'खंडकाव्य' ही समझना चाहिए। इसमें पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर आदिवासी देवी-देवता, राजा-रानी, जीवन पद्धति और अन्न देवता तक की गाथाएँ शामिल होती हैं। इसके द्वारा हर बच्चे-बूढ़े का अपनी धरती, करहण (फ़सल) परंपरा और इतिहास से एक जीवंत रिश्ता बना रहता है। जीवनशालाओं में उसी समाज से निकल कर पढ़े-लिखे शिक्षकों के द्वारा 'गायना' में बुनी हुई कई कहानियों की किताब छपवाकर यदि हम उसे पाठ्यक्रम में जोड़ दें तो इस नये माध्यम की ताकत को हम 'अनौपचारिक' से 'औपचारिक' शिक्षा में ला सकते हैं। सच तो यह है कि अनौपचारिक-औपचारिक का वर्गीकरण भी पूर्णत: सही नहीं है। दोनों शिक्षा के अपने अपने प्रवाह हैं और कोई बच्चा या व्यक्ति दोनों के समायोजन से ही कुछ सीखता है।

इन आदिवासी बच्चों के पहाड़ी जीवन का प्राकृतिक परिवेश ऐसा है कि इन्हें अक्सर पहाड़ी चढ़कर ही शाला में पहुँचना पड़ता है। इसके अलावा अपने निजी प्रयोजन के लिए भी और हर रोज़ दो बार छोटी बड़ी टेकड़ी (पहाड़ी) उतर कर नदी में नहाने और पानी लेने जाना होता है। इसके अलावा दो नहीं, तीन या चार बार नाश्ता-खाना करते दिन गुज़रता है। पालक अपने बच्चों को प्राथमिक के बाद माध्यमिक शाला के लिए दूर भेजना पसंद नहीं करते थे, दूसरी ओर बच्चे भी बंद कमरों और ऊँची इमारतों वाले शिक्षण संस्थानों में ऊँची शिक्षा के लिए जाना पसंद नहीं करते थे। शिक्षकों की मेहनत और प्रयास से, थोड़े खुले परिवेश की शालाओं में ही ये बच्चे टिक पाए क्योंकि वहाँ उन्हें उनकी बोली में संवाद जारी रखने वाले दोस्त और सहयोगी मिले। नदी और पहाड़ी के साथ रह कर बढ़े हुए इन बच्चों को शहरी शिक्षा-संस्कृति में ढालना आसान नहीं होता है। अपने-अपने परिवेश और जीवनपद्धति से जुड़कर राष्ट्रीय और मानवीय मूल्यों की परिधि में शिक्षा को ढालने की बात विविधताओं में एकता की राह से आगे ले जानी होगी; जो लोकतांत्रिक और जनवादी होगी। इसी के माध्यम से शिक्षा के समाजीकरण के दूसरे स्तंभ, लोकतंत्र को समझना होगा।

मैक्स वेबर ने कहा है, कोई भी सामाजिक प्रक्रिया, चाहे शोध हो या शिक्षा, तटस्थ नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह किसी विचारधारा के आधार पर ही चलती है। हमें पूछना चाहिए कि हमारे संविधान में रेखित मूल्यों जिसमें समता के अलावा बंधुता, स्वातंत्र्य और समाजवाद भी सम्मिलित है के अंतर्गत क्या हर बच्चे को 14 साल तक शिक्षा के अधिकार के तहत शिक्षा मिलती है? इतना ही नहीं क्या शिक्षाकर्मी प्रत्येक बच्चे-बच्चे तक इन मूल्यों को

पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है? यह ज़िम्मेदारी सिर्फ़ शासन पर डाल देना अव्यावहारिक ही नहीं बल्कि असामाजिक भी है। महात्मा फुले एवं सावित्रीबाई फुले जैसे समाज सुधारकों ने नगरीय समाज की ओर से शिक्षा को एक कानूनी नहीं, बल्कि मानवीय अधिकार मानकर कार्य किया था। आज भी शिक्षा को वंचित समाज और महिलाओं तक पहुँचाने के लिए आवश्यक राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी है। शासन द्वारा शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की असलियत भी अब हमारे सामने आ गई है। चारगाहों, ढोरों के साथ दिनभर घूमते एवं शहर की गंदी नालियों में से सड़ा हुआ प्लास्टिक निकालकर, भंगार इकट्ठा कर बेचने वाले कितने बच्चे औपचारिक शिक्षा के दायरे में हैं?

शिक्षा में लोकतंत्र – विकेंद्रित विकास नियोजन से

बस्ती/गाँव का हर बच्चे को अपनी निश्चल अवस्था में कोमल उम्र में, कोरी पाटी (स्लेट) जैसे सुंदर, समृद्ध संस्कार पाने के लिए ज़रूरी है कि शिक्षकों का चयन शिक्षा के उद्देश्य, अभ्यास या सीख का क्रम, पद्धति स्थानीय बस्ती, गाँव और समाज से ही किया जाए। इस तरह स्थानीयता की संस्कृति के साथ न केवल शालाओं की इमारतें खड़ी होंगी, बल्कि एक जीती-जागती व्यवस्था भी तैयार होगी, जिस पर समाज का ध्यान, सहभागिता और निगरानी भी होगी। प्रश्न उठता है क्या 'शिक्षाविदों' के बिना समाज की इकाई में इस कार्य को करने के लिए आवश्यक क्षमता की कमी है? इसका उत्तर है बिल्कुल नहीं। यदि प्रत्येक बस्ती या मुहल्ला, गाँव, समाज अपने बच्चों को मूल्याधारित शिक्षा देने के कार्य अपने ही बलबूते पर नियोजित करें तो शिक्षा के माध्यम से नवनिर्माण का एक नया जोश और नया आंदोलन खड़ा हो सकेगा। समाज के सशक्तीकरण के लिए भी यह ज़रूरी है कि वह अपने जीवनदर्शन को समझे, उसे सार्वजनिक बहस में लाए और शिक्षा में समाहित करे, जिससे कि वह अपने भविष्य निर्माण में सहभागी हो सके।

शिक्षा में अपनी मातृभाषा, अपना प्राकृतिक परिवेश से जुड़ाव, समाज की अपनी सांस्कृतिक धरोहर, और वैज्ञानिक तकनीकी योगदान और अपनी अगली पीढ़ी के लिए निरंतर टिकाऊ विकास का नज़रिया प्रतिबिंबित हो। यह एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी के भविष्य निर्माण की ओर अपनी ज़िम्मेदारी की भावना सुदृढ़ होने के लिए, स्वावलंबी विकास के लिए और विकास नियोजन में आज दिखाई दे रही बेरोज़गारी या पलायन जैसी समस्याओं का बुनियादी हल ढूँढ़ने के लिए भी ज़रूरी है।

समतामूलक लोकतांत्रिक विकास नियोजन की प्रक्रिया में शिक्षा या स्वास्थ्य जैसी ज़रूरतों को साथ लेकर चलने की चुनौती आज भी हमारे सामने है। देर से ही सही संविधान में 1992 में समाविष्ट धारा 243 एवं 73-74वें संशोधनों के माध्यम से इसे स्वीकारने के लिए पर्याप्त मौका और अधिकार दिया गया है। पंचायती राज की संरचना गाँवों में एक-एक ग्राम सभा और शहर में वॉर्ड सभा जो योजना प्रारूप तैयार करेगी उसी पर ज़िला विकास योजना तैयार होंगी और इसी आधार पर 'पंचवर्षीय योजना' का ढाँचा खड़ा करना होगा। अनुसूची 11 के तहत पंचायतों द्वारा संचालित करने के कार्यों में प्राथमिक और माध्यमिक, तकनीकी, अनौपचारिक और प्रौढ़ शिक्षा भी सम्मिलित है। लेकिन दु:खद बात यह है कि आज तक किसी भी क्षेत्र में-चाहे ज़मीन का उपयोग, नियोजन और बँटवारा या शिक्षा; पंचायतों, स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं एवं ग्राम सभा की सही भूमिका उभरने ही नहीं दी गई है। देश के योजना आयोग के उपाध्यक्ष ने 11वीं पंचवर्षीय योजना को अंतिम रूप देने के लिए सभी मुख्य सचिवों से ग्राम सभाओं में बनाई गई विकास योजनाएँ तुरंत भेजने के लिए पत्र द्वारा दिखावटी आग्रह किया था लेकिन सत्ता केंद्रों में बैठे हमारे ही नुमाइंदों ने सही और ईमानदारी से इस प्रक्रिया को चलाने में कोई रुचि या इच्छाशक्ति नहीं दिखाई।

देश में शिक्षा के क्षेत्र में भी इक्का-दुक्का प्रयोग चल रहे हैं, जिनका लक्ष्य शैक्षिक क्षेत्र में स्थानीय इकाई के सहभाग को बढ़ाना और उसे समृद्ध करना है। नर्मदा घाटी में हमने देखा कि आदिवासी गाँवों में सक्रिय प्रतिनिधियों के द्वारा अगुवाही और मेहनत -'जीवन शाला' को ज़मीनी विकास का हिस्सा बनाती है। दशकों से बंद पड़े ज़िला पंचायत के स्कूल या न चलने वाली 'बस्ती शालाएँ', जिन्हें भ्रष्ट प्रशासन की वजह से खोलना संभव नहीं हो पाया, वहाँ गाँववासियों द्वारा स्वमेव शिक्षक ढूँढ़ने एवं शालाएँ चलाने में प्रमुख भूमिका अदा करना अपने आप में एक विशेष एवं आत्मविश्वास पैदा करने वाला अनुभव रहा। इन शैक्षणिक संस्थानों के केवल व्यवस्थापन में ही नहीं, बल्कि पाठ्यक्रम तय करने और पद्धति और माध्यम सुनिश्चित करने में गाँव समाज का योगदान बढ़ाने की चुनौती आज भी हमारे सामने है। महाराष्ट्र में विविध संस्था-संगठनों ने कोंकण के सिंधुदुर्ग, कोल्हापुर, पूना, ठाणे एवं नासिक ज़िले में जिस तरह से शिक्षा में समाजीकरण लाने का कार्य किया है उसे राष्ट्रीय स्तर पर अपनाने की आवश्यकता है। गौरतलब है स्थानीय विशेषताएँ और स्वरूप न बदलते हुए अनेक छोटे माइक्रो से लेकर व्यापक माइक्रो योजनाएँ बनाना संभव है।

समाज की सहभागिता बढ़ने पर भी शासन की ज़िम्मेदारी कम नहीं होती बल्कि बढ़ जाती है। जिस प्रकार देश में अपनाई गई मिश्रित अर्थव्यवस्था निजी उद्योगों को स्थान देने के साथ उन्हें नियंत्रित रखने की कुशलता और ज़रूरी हस्तक्षेप ही यह तय करता है कि अशासकीय योगदान राष्ट्र की औद्योगिकीकरण की दिशा को सही मंज़िल की ओर ले जाए इसी के साथ यह निष्कर्ष भी निकलता है कि निजी क्षेत्र और शासकीय यानि सार्वजनिक प्रयासों के लिए पूरक रहेगा या मारक; ठीक वैसा शिक्षा क्षेत्र में भी है। स्थानीय से आगे बढ़कर राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय दायरे की बात हमारी शिक्षानीति में अपरिहार्य है। आज जबकि पूरी दुनिया को ग्लोबल विलेज (वैश्विक गाँव) की संकल्पना में ढालने में सरकारें और समाज के कुछ तबके कार्यरत हैं तब शिक्षा के बुनियादी ढाँचे, औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के भी नीति नियम और माध्यम, मूल्यों की नींव और उद्देश्यों की छत ठीक होने से ही हमारी अपेक्षा पूरी होगी। सर्वव्यापी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए समाज को चुने हुए शासन के साथ मिलकर ऐसी शिक्षा-नीति और प्रणाली बुननी होगी जिसकी कि आज कमी महसूस की जा रही है। हाँ, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने इस ओर प्रयास किए हैं। पिछले दो-तीन सालों में समाज से सहभागिता यानि सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा संस्थाओं के साथ हो रहा आदान-प्रदान भी पाठ्यक्रम पर अपना असर डालता रहा है। यह खुली प्रक्रिया शिक्षा ही नहीं व्यापक समाधान के क्षेत्र में कार्यरत एक बड़ी बिरादरी शासकीय शिक्षा कार्य में भी सहयोग को बढ़ावा देती हुई दिखाई दी है परंतु इसे अप्रासंगिक और निष्क्रिय बना दी गई इकाइयों (कम से कम ज़िले तक)तक पहुँचाना ज़रूरी है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह प्रक्रिया सिर्फ़ बहस या संगोष्ठियों तक सीमित होकर ही न रह जाए बल्कि इस संदर्भ में आम सहमति पर पहुँचना आवश्यक है। विषमता, मतभेद और भेदभाव से भरपूर हमारे समाज में यह कार्य आसान नहीं है, परंतु इससे छुटकारा पाने का प्रयास तो करना ही होगा। क्रांतिकारी शिक्षामहर्षियों ने इस दिशा में अमूल्य योगदान दिया है।

बुनियादी शिक्षा की कल्पना की बात गाँधी-टॉलस्टाय से शुरू करें। उन्होंने समाज में शांति के साथ-साथ न्याय की प्रतिष्ठापना भी अपनी बुनियादी शिक्षा की सोच में समाहित की थी। गाँधी जी ने तो शिक्षा को जीवन का हिस्सा बनाने

के लिए ही इसे रोज़गार से ही नहीं बल्कि श्रम से जोड़ा था। उनकी संकल्पना थी कि शिक्षा से, जिससे श्रम की प्रतिष्ठा भी बढ़े और शिक्षा का स्थान भी स्थापित हो। साथ ही इसके माध्यम से मनुष्य अपनी ज़रूरत पूर्ति में सक्षम हो। हाथ से किया काम को कमतर आँका और बुद्धिजीवी कार्य को उच्च—उसी पर जीने वाले समाज के तबके भी प्रतिष्ठित मानने की भावना और विचार से मुक्ति ही इस शिक्षा की सोच है। समता की महत्ता और ऊर्जा बढ़ाने वाली शिक्षा ही यह हासिल कर सकती है। इस विचार से देश में व्यावसायिक शिक्षा को स्थान मिला लेकिन वह महज़ एक औपचारिकता या अधिकृत योजना-सी बनकर रह गई। आज तो स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि व्यावसायिकों के अपने हित में चल रही शिक्षा सिर्फ़ 'मार्केटिंग' के कार्य का ही हिस्सा बनकर रह गई है। शिक्षा का लालित्य अपेक्षित प्रतिभा, सृजनशीलता, जीवन और जीविका के साथ जुड़ाव और उसमें समाज के सहयोग की बुनियाद ढहकर यह मात्र एक रोज़गार कमाई का साधन बन गई है।

व्यवसायों में भी कुशलता के प्रशिक्षण की ज़रूरत उन तबकों को है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चल रहे व्यवसाय में नया तंत्रज्ञान जोड़कर विकास का हिस्सा बन सकते हैं। उन तक पहुँचकर और उनके योगदान से आगे बढ़ने की तमन्ना शिक्षा योजनाकारों में कदाचित ही दिखाई देती है। जातिगत व्यवसायों को 'आरक्षित' रखना कोई नहीं चाहता लेकिन साथ-साथ नये तंत्र और यंत्र के युग में पारंपरिक व्यवसाय पर जी रहा तबका, जो खेतीहरों, बुनकरों और अन्य दस्तकारों का है, उनके लुप्त हो जाने के प्रति हम अधिक चिंतित नज़र नहीं आते? हर बजट में इन सबका ज़िक्र होते हुए भी व्यावसायिक शिक्षा की योजना बुनियादी शिक्षा की मूलभूत संकल्पना को केंद्र में रखते हुए इन समुदाय के उच्च वर्ग निर्माण को ध्यान में रखकर लेकिन रोज़गार निर्माण की दिशा देने वाली क्यों नहीं बन सकती?

शिक्षा का बाज़ारीकरण – बदली मंज़िल बदली राहें!

शिक्षा के बाज़ारीकरण का एक महत्वपूर्ण कारण इसका कंपनीकरण है। कंपनियों का हावी होना केवल शिक्षा के निजीकरण तक सीमित नहीं है। इससे शिक्षा की बुनियाद (विशेषत: उच्च शिक्षा की), कॉर्पोरेट जगत के मान्य उद्देश्यों, ज़रूरतों, मानवी संसाधनों की उसमें चल रही स्पर्धा आदि के अनुरूप सफलता हासिल करने वाली बनती जा रही है। बाज़ारीकरण के इस युग में शिक्षा का बड़ा हिस्सा

विशाल निजी पूँजी निवेश से चलाए जा रहे संस्थानों द्वारा संचालित होता जा रहा है जिसका विपरीत प्रभाव शासकीय या सामाजिक अगुवाही वाले शिक्षा कार्यों पर भी पड़ रहा है। अंग्रेज़ी शिक्षा माध्यम की हर जगह आवश्यकता महसूस की जा रही है। 'सृजन' केंद्रित उत्पादन में सहायक शिक्षा के बदले अप्रत्यक्ष सेवाओं के लिए ही 'शिक्षित कैडर' तैयार करना, या फिर देश के सामाजिक-आर्थिक सवालों को आत्मसात करने और उनका हल सुझा सकने वाली शिक्षा की जगह अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त भौतिक उच्चांकों, प्रतीकों और पद्धतियों में माहिर बनने की कोशिश शिक्षा का मूल उद्देश्य बनता जा रहा है। उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश न पाने वाले गरीब या दलित समाज के मन में हीनता पैदा करने वाली आर्थिक पूँजी के माध्यम से फैलने वाली इस गैर बराबरी शिक्षा के बाह्य हुए प्रभाव, दबावों को समाज में इसे 'आधुनिक राह' न पाने वाले बहुसंख्य युवा भुगतते हैं। इससे पार पाने के प्रयासों में वे अपने स्थानीय और पारंपरिक रिश्ते तक खो बैठते हैं और परिणामस्वरूप शिक्षा से ज्ञान को नज़रअंदाज़ कर वैभवशाली सम्मान पाने की ईर्ष्या में लिप्त हो जाते हैं।

'आधुनिक पूँजीवादी विकास' में मानव संसाधनों को भी 'पूँजी' मानकर उसे समाज विकास का माध्यम नहीं बल्कि बाज़ार निवेश के साधन के रूप में विकसित करने की सोच बढ़ती जा रही है। आज भी शालाओं में बड़ी संख्या (करीबन 90 प्रतिशत) शासकीय शालाओं की ही है। इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र की न्यूनतम हिस्सेदारी के बावजूद अंबानी-बिरला जैसे उद्योगपतियों ने शिक्षा संबंधित एजेंडा बनाने का कार्य अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया। वैसे उनका प्रस्ताव लोकसभा में पारित नहीं हो पाया परंतु इससे एक स्पष्ट संदेश उभरा कि ''पूँजी प्रत्येक वस्तु के साथ ही साथ ज़मीर भी खरीद सकती है और वह न केवल वस्तुओं का किंतु ''विचार'' का भी उत्पादन कर सकती है।'' वैश्वीकरण के साथ 'उदारीकरण' के नाम पर पूँजीपतियों को अधिक छूट, अधिक सब्सिडी, अधिक ज़मीन और प्राकृतिक संसाधन देने की नीति न केवल देशी बल्कि विदेशी पूँजी और माध्यमों को भी बड़ी मात्रा में उपलब्ध करवाई जा रही है। उड़ीसा की 'वेदांत यूनीवर्सिटी' का वेद या अध्यात्म से कोई संबंध नहीं बल्कि यह स्टरलाइट कंपनी का ही दूसरा नाम है। अपना गैरकानूनी और अन्यायपूर्ण तरीके से बढ़ाया गया खदानों का व्यापार सुरक्षित और प्रचारित करने के लिए अब कंपनी शिक्षा जैसे सामाजिक कार्य में अपने कदम आगे बढ़ा रही है। इस

विश्वविद्यालय को दी जा रही हज़ारों एकड़ ज़मीन एवं विस्थापन के खिलाफ स्थानीय आक्रोश चरम पर है वहीं सर्वोच्च अदालत भी एक बार उनका लीज़ अनुबंध रद्द कर चुकी है। *कोका कोला* हो या *एनरान*, उनका शिक्षा के नाम पर उन क्षेत्रों में जहाँ वे विकसित होते हैं अपना धंधा बरकरार रखना है। वे जिस तरह से लाभ कमाते हैं वह किसी से छिपा नहीं है। अपनी पोल खुलने के डर से वे स्थानीय समुदाय में फूट डालते हैं। इतना ही नहीं वे स्थानीय स्तर के सार्वजनिक विद्यालय या तो खरीद लेते हैं या कानून को तोड़-मरोड़ कर बंद करवाते हैं और जिसका पूरा ब्यौरा समाज के सामने नहीं आ पाता है। मुंबई में महानगर पालिका की एक शाला की जगह अंतर्राष्ट्रीय स्कूल खुलवाने की साज़िश और वहाँ पहले से पढ़ने वाले बच्चों द्वारा लाख रुपये सालाना फ़ीस देने में असमर्थ होने के कारण उन्हें हटाकर अन्य समृद्ध परिवारों के बच्चों की भर्ती की हकीकत, सूचना के अधिकार का उपयोग करते हुए उजागर की गई। इसके पश्चात् महानगर पालिका के आयुक्त को उस अंतर्राष्ट्रीय स्कूल को बंद करना पड़ा, लेकिन मुख्यमंत्री जी ने कोई अवांदि सा कारण बताते हुए स्कूल को क्लीन चिट देकर आज तक चालू रखा हुआ है। वैसे ही शिक्षा का निजी धंधा बढ़े, इसलिए सार्वजनिक, सरकारी शालाओं को धीरे-धीरे बंद करने की मध्य प्रदेश सरकार की हकीकत या उन्हें साधन और समर्थन न देते हुए कमज़ोर या अव्यावहारिक बनाने की प्रक्रिया 'सर्व शिक्षा अभियान' की घोषणा ज़ारी रखते हुए भी आगे बढ़ रही है, यह बहुत ही चिंता की बात है। मुंबई और महाराष्ट्र का अनुभव यह भी है कि उर्दू, तमिल, कन्नड़ जैसी भाषाओं में प्रादेशिक विभिन्नता से भरे शहरी समाज के बच्चों को पूर्व में अपनी मातृभाषा में जो शिक्षा प्राप्त होती थी वह अब मानवता के अभाव में बच्चे नहीं, और बच्चे नहीं इसलिए ध्यान नहीं, जैसे दुष्चक्र में फँसती जा रही है। शासन से ज़रूरी साधन, मानव संसाधन याने अच्छे शिक्षक और उनका प्रशिक्षण भी आंगनवाड़ी से उच्च माध्यमिक तक और उससे भी आगे (आईआईटी, आईआईएम जैसे कुछ सफ़ेद हाथी से दिखाई देने वाले शिक्षा संस्थान छोड़कर) पर्याप्त रूप में उपलब्ध न किए जाने की स्थिति में सहायता जुटाने के नाम पर निजी कंपनियों या पूँजीपतियों यानि मुनाफ़ाखोरों का प्रवेश विविध मार्गों से हो रहा है। इसे स्वीकार ही नहीं बल्कि सराहा भी जा रहा है। अंबानी की रिलायंस कंपनी को मुंबई में महानगर पालिका की शालाओं के पास बची ज़मीन बेचने की योजना ऐसी ही

एक योजना है। इसके अंतर्गत बेची हुई ज़मीन के बदले उस विद्यालय को कंपनी से मात्र एक 'कंप्यूटर लैब' प्राप्त हो पाएगी। यह सब क्यों हो रहा है यह सहज ही समझा जा सकता है।

इस तरह की पूँजी केवल कंपनियों का हस्तक्षेप ही नहीं बल्कि उनके इस क्षेत्र में प्रवेश और कब्जा, राजनीतिक हस्तक्षेप का प्रत्यक्ष उदाहरण है। दूसरी ओर शिक्षा को बुनियादी अधिकार मानने के बावजूद पर्याप्त वित्तीय सहायता न देने वाली राजनीति राजनेताओं के लिए कमाई का साधन बन गई है। इसे प्रत्येक राज्य में मंत्री या छोटे-बड़े राजनेताओं द्वारा खोले गए अथवा खोले जा रहे शिक्षा संस्थानों का स्वामित्व: समझा जा सकता है। इस देश में एक ''शिक्षा साम्राज्य'' स्थापित होता जा रहा है। महंगी शिक्षा से वंचित समाज की मजबूरी साफ़-साफ़ नज़र आती है। फिर चाहे वह बस्ती की किसी बहन द्वारा अपने 4 साल के बच्चे को नर्सरी में डालने की कोशिश हो या दलित बहुजन समाज में आरक्षण या बिना आरक्षण के ऊपर आए विद्यार्थियों को कर्ज़दार बनाकर शिक्षा प्राप्त करने की लाचारी हो या किसान परिवार द्वारा स्वयं को बंधक रखकर अपने बच्चे को दिलाई गई शिक्षा हो जो कि पहले ''डिग्री'' उसके बाद स्वयं को ''नौकरी'' पाने की तड़प तक सीमित कर लेती है। जो अंतत: एक घृणास्पद बोझ के रूप में सामने आती है। गैर सरकारी प्रयासों को प्रोत्साहित करने के प्रति *केपिटेशन फी* या चमचमाते आलीशान शिक्षागृहों के माध्यम से लूट की छूट देने वाले शासनकर्ता और जिन्होंने अपनी स्वयं की तिजोरी में जैसे कि उद्योग, खनिजदोहन या गृहनिर्माण जैसे अन्य क्षेत्रों में खुले हाथों से लुटाई है वैसा ही अब ये शिक्षा के क्षेत्र में कर रहे हैं और इसी के परिणामस्वरूप निजी पूँजी निवेश का सबसे चहेता क्षेत्र बन गई है। शिक्षा पूँजीपतियों का मुनाफ़ा बढ़ा रही है। शासन से ऐसी संस्थाओं के लिए बड़े पैमाने पर दान, ज़मीन आबंटन तथा सभी टैक्स में मिल रही छूट से शिक्षा के, इन दुकानदारों को बढ़ावा मिल रहा है। इसका वज्रपात न केवल दलित, पीड़ित समाजों पर जो आरक्षण के बावजूद वंचित रहे हैं बल्कि अन्य जाति संप्रदाय के आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर तबकों पर भी हुआ है। फलस्वरूप आरक्षण के मुद्दे पर शिक्षा में समता के नाम पर विद्यार्थियों के मध्य टकराव ही नहीं, आपसी द्वेषभाव यानि जातिवाद को भी बढ़ावा मिला है। आरक्षण विरोधी आंदोलन ने आरक्षण के उद्देश्यों को मिटाने के बीज समाज में डाल दिए हैं। कई जानकारों का मानना है कि आरक्षण नीति को खत्म करके शिक्षार्थियों

को अपने उपभोक्ता बनाने के लिए अधीर कंपनियों, पूँजीपतियों का भी इस विवाद को हटा देने में हाथ था। संवैधानिक समतावादी पहल को समाप्त करने वाले बाज़ारू प्रभाव दबावों का यह सिलसिला जो आज राजनीति को जोड़कर चल रहा है उसका अंतिम परिणाम क्या होगा यह कह पाना मुश्किल है लेकिन इसकी भयावहता ज़रूर समझ में आ रही है।

निजीकरण की इस साज़िश में न केवल पूँजीपति बल्कि राजनेता भी शामिल हैं ये अपने निजी विद्यालय, महाविद्यालय या शिक्षा संस्थान खोलना जारी रखते हुए, शासकीय सहायता और सहानुभूति के विशेष पात्र बने हुए हैं। दूसरी ओर शिक्षानीति में भी अब शासन की ज़िम्मेदारी के साथ-साथ या कई मामलों में तो उससे भी अधिक विश्वास गैर-शासकीय शिक्षा संस्थानों पर किया जा रहा है। हमारा अनुभव रहा है, बड़े-बड़े बिना अनुदान शिक्षा संस्थानों को भरसक छूट देने वाला शासन किंतु छोटी, प्रयोगशील शालाओं के प्रति बिल्कुल भी सहिष्णु नहीं। इसी का परिणाम है कि समाज में, किसी गरीब बस्ती या आदिवासी गाँव में शुरू की हुई एकाध प्राथमिक पाठशाला भी, बिना अनुदान के या शासकीय मंज़ूरी के बिना नहीं चलाई जा सकती। इस नियम को दिखाकर नर्मदा किनारे की जीवनशालाओं को बंद करने का नोटिस जब महाराष्ट्र शासन ने दिया तब हमें समझ में नहीं आ रहा था कि हम इस पर हँसें या रोएँ। उन्होंने इसके कारण गिनाए। उनके अनुसार हमारे पास इन्हें चलाने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं थे जबकि हमारी 10 से अधिक जीवनशालाएँ पिछले 10 सालों से सुचारु रूप से चल ही रही हैं और उनमें वे कोई कमी दिखा ही नहीं सकते थे। शाला बंद करने का दूसरा कारण दिया था कि क्षेत्र में ज़िला परिषद् के पर्याप्त स्कूल चल रहे हैं इसलिए और किसी स्कूल की ज़रूरत नहीं है। यह हँसी की नहीं बहुत ही गंभीर बात है क्योंकि सतपुड़ा की घाटी के शत-प्रतिशत आदिवासी पहाड़ी क्षेत्र में जहाँ हमारा संगठन सक्रिय है ज़िला पंचायत की एक भी प्राथमिक शाला का अस्तित्व ही नहीं है। फिर ये झूठ क्यों? पहली से चौथी तक इन शालाओं में अध्ययन करने पर शासकीय परीक्षा में भाग लेने की मंज़ूरी शासन से आसानी से क्यों नहीं मिलती? क्यों जीवनशालाओं जैसे समाज से पुरस्कृत उपक्रमों को शासन द्वारा मान्यता नहीं दी जाती? सच तो यह है कि यह निर्णय शिक्षा के सामाजीकरण के खिलाफ़ और बाज़ारीकरण के पक्ष में बिना अनुदान के चलने वाली शालाएँ बंद करना शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि शिक्षा की कीमत बढ़ाने के लिए है। ज़ाहिर है कि अनुदान के बँटवारे में राजनेताओं का, अधिकारियों का कमीशन तय होने से और बड़ी कंपनियों या कंपनियों जैसी संस्थानों की शालाओं को ही नहीं, विश्वविद्यालयों

को भी शासकीय मान्यता और बढ़ावा मिलने से नगरीय समाज के छोटे किंतु स्वत:धूर्त प्रयास असमय मौत का शिकार हो रहे हैं। शिक्षा क्षेत्र में समाजीकरण की जगह निजीकरण को बढ़ावा मिल रहा है।

बदलाव की दिशा

तीन पहलू–समान, जीवनदायी और मानवीय शिक्षा

इस स्थिति में बदलाव लाने के लिए चिंतित लोग देश भर में मौजूद हैं। उनके सामने बहुस्तरीय चुनौतियाँ हैं। पहली है नीतिगत बदलाव और समान शिक्षा के हक को आगे बढ़ाने की। दूसरी, शिक्षा के विषय, पाठ्यक्रम के साथ ही साथ माध्यम को भी जनवादी बनाने की तथा तीसरी, शिक्षा को सामाजिक एकता, राष्ट्रीय एकात्मकता और मानवीय रिश्तों का माध्यम बनाने की।

समान शिक्षा की बात धीरे-धीरे केवल हक की नहीं, एक नये आंदोलन की बुनियाद बनती जा रही है। आज बस्ती स्तर पर समाज सिर्फ़ महात्मा फुले और सावित्री बाई से प्रेरणा लेकर ही शिक्षा के फैलाव की नहीं सोच रहा बल्कि अब तो उसके द्वारा बाबा साहब तक से प्रेरणा लेकर सामने आई महिलाएँ और बहुजन समाज इसके माध्यम से अपने सामाजिक-आर्थिक बदलाव का सपना भी हासिल करना चाहता है। इसी वजह से शिक्षा को बाज़ारी वस्तु न बनने देने का संकल्प जनसामान्य से अपेक्षित है। आज जनसंख्या का बड़ा भाग शिक्षा से पूर्णत: वंचित है। अगर जातिवाद से निपटने की घोषणा के बावजूद इस नये प्रकार का जातिवाद उभरने के लिए आर्थिक विषमता मूल कारण है तो इस विसंगति को समाप्त करने के लिए शासन के हस्तक्षेप का रास्ता खुलना ज़रूरी है। सहायता देते समय शासन ने समान शिक्षा की ज़िम्मेदारी उठानी चाही। इस बात पर अपना विश्वास व्यक्त करते हुए हर तबके का मत है कि वित्तीय जवाबदारी का भय न रखते हुए शिक्षा पर खर्च की जाने वाली महाकाय राशि की प्राथमिकता जब सरकार तय करेगी तभी स्थिति बदलेगी परंतु ऐसा होता दिखाई नहीं पड़ता। अंबानी या टाटा, मित्तल या जिंदल की कंपनियों को करोड़ों रूपये देने वाला शासन विद्यार्थियों के लिए मुफ़्त शिक्षा के लिए क्यों तत्परता नहीं दिखाता? भारत की जनता को यह मालूम होना चाहिए कि फ्रांस, क्यूबा जैसे कम जनसंख्या वाले देश ही नहीं चीन जैसे (अपनी तरह) बहुल जनसंख्या के देश में भी सरकार शिक्षा की पूर्ण ज़िम्मेदारी उठाती है। आँगनवाड़ी से लेकर उच्च व्यावसायिक शिक्षा तक का सारा खर्च शासन को उठाने की ज़रूरत है। लेकिन इसका अर्थ

यह नहीं है कि सब कुछ सरकारी और भ्रष्टाचारी पद्धति से ही आगे बढ़े। शासन द्वारा लोकतांत्रिक होकर शिक्षाकार्य चलाने का अर्थ है, गैर सरकारी यानी सामाजिक योगदान को साथ लेकर चलना। इसका अर्थ स्थानीय, राष्ट्रीय, विविध स्तर के शिक्षा शास्त्री, विद्वान या वैज्ञानिक और देशी-विदेशी तकनीक को पूर्ण रूप से नकारना भी नहीं है। शिक्षा को देश की संस्कृति को लेकर नया भविष्य बनाने का सपना ही नहीं बल्कि यहाँ की वास्तविक ज़रूरतों के आकलन का माध्यम भी बनना होगा। साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि हमारे जीवन से छेड़छाड़ न हो, यह समाज और शासन, दोनों की ज़िम्मेदारी है।

मंडल आयोग ने हमारे बंधुता, समता, न्याय के मूल्यों को शिक्षा में उतारने का संदेश दिया। पर आज भी चप्पल और स्लेट के अभाव में, दूरी के कारण पहुँचने में असमर्थ होने से एवं छात्रावास में जगह न पाने पर वापस लौट आने वाले दलित, आदिवासी, बहुजन समाज और गरीबी भुगतने वाले बच्चे हमारी आँखों के सामने हैं। उन्हें साथ लेने के नाम पर वोटों की राजनीति ज़रूर चलती रही है लेकिन इन वंचितों तक पहुँचने के उद्देश्य से ही गठित की गई कोठारी आयोग शिक्षा पर बजट का 6 प्रतिशत खर्च करने की सिफ़ारिश अभी तक प्रत्यक्ष रूप नहीं ले पाई है। 2000 से 2007 तक शिक्षा पर केवल 2 से 3.2 प्रतिशत तक ही खर्च हुआ। शहरी धनिकों के उपभोग से जुड़े भव्य '*इन्फ्रास्ट्रक्चर*' (जैसे हायवेज़, हवाई जहाज़ अड्डे इत्यादि) पर हो रहे खर्च, कर्मचारियों के वेतन हेतु छठे वेतन आयोग का बोझ डालने वाले खर्च की तुलना फिर 'सुरक्षा' पर हो रहे खर्च की तुलना यदि शिक्षा पर होने वाले खर्च से करें तो मन में आक्रोश पैदा होता है। आज की राजनीति गलत प्राथमिकताओं पर ही पलती है। अब यह स्पष्ट होता जा रहा है कि आज़ादी के साठ साल बाद भी देश में विद्यमान इस विषमता को दूर करने के सामाजिक उद्देश्य को हासिल करने में भारत के शासक, राजनेताओं की कोई रुचि नहीं है। इसलिए शिक्षा में गैर बराबरी से चिंतित शिक्षा प्रेमियों को एवं जनसामान्य को इस कार्य के लिए मशाल जलाना ज़रूरी है।

जीवनदायी शिक्षा – दूसरी मंज़िल

आम जनता यह कार्य संघर्ष के द्वारा कर सकती है। आज आवश्यकता है अर्थनीति में शिक्षा को स्थान और सम्मान न देने वाली तथा शिक्षा के पक्ष में इच्छाशक्ति न रखने वाली राजनीति से संघर्ष की। समाज में शिक्षा के प्रति आग्रह

में विस्तार के प्रति जागरूकता बढ़ाने का कार्य केवल कुछ शिक्षाशास्त्रियों या चंद बुद्धिजीवियों की वकालत करने से संभव नहीं होगा। इसके लिए एक भूमि और भूमिका तैयार करनी होगी। शिक्षा से बहुसंख्यकों को वंचित रखने वाला 'नव ब्राह्मणवाद' जब आम लोगों की समझ में आ जाएगा, तब उन्हें शिक्षा की माँग अपनी अस्मिता और विकास के लिए अनिवार्य मानकर, इसके लिए उठ खड़े होने में समाज को देर नहीं लगेगी। 'शिक्षा' में राजनीतिक घुसपैठ नहीं किंतु शिक्षा को लेकर लोगों की माँग को समर्थन दिलवाने में राजनीतिक स्पर्धा का निर्माण करना ज़रूरी है। किंतु महज़ चुनावी प्रचार में ही नहीं बल्कि सतत रूप से समान शिक्षा के मुद्दे पर जनशक्ति जुटाकर कार्यरत रहने से ही संभव होगा। दलितों, आदिवासियों, श्रमिकों के साथ जल-जंगल-ज़मीन, विस्थापन, सामाजिक न्याय या अन्य किसी भी मुद्दे पर कार्य करने वाले जनसंगठन यदि ठान लें तो वे एक ऐसी परिवर्तनवादी शिक्षा शैली के निर्माण में सहायक हो सकते हैं जो समाजीकरण को बल दें।

आवश्यकता है प्रचलित पाठ्यक्रमों को आज की वास्तविकता से जोड़ने की। समाज में 'आधुनिकता के नाम पर हो रहे बदलाव' शिक्षा के नए आयामों की ज़रूरत महसूस करवा रहे हैं। शिक्षा में दुनिया की हर घटना और तकनीक को सम्मिलित करने की स्पर्धा लगी हुई है। लेकिन आवश्यकता है भाषा की विविधता, जैव संपदा, सादगी, मेहनत और निरंतरता के आधार पर बनी जीवन प्रणाली की सोच, शिक्षा नीति ही मसौदों में केवल परिलक्षित न हों बल्कि प्रत्येक बालक तथा पालक के दिल-दिमाग में भी बस जाए, इसलिए मात्र शिक्षा के उद्देश्य और सिद्धांत तय करने वालों की आवश्यकता नहीं है बल्कि अपना भविष्य तय करने में समाज सहयोग की प्रक्रिया आगे बढ़ाने वालों की भी ज़रूरत है। महाराष्ट्र के सोलापुर ज़िले में *हॅलो फाउंडेशन* ने मुस्लिम एवं दलित बस्तियों में स्वास्थ्य संबंधी कार्य में सैंकड़ों विद्यार्थियों को ले जाने में सफलता प्राप्त की है। तो कृष्णमूर्ति *फाउंडेशन* चेन्नई के स्कूल के और केरल में त्रिथूर के पास की 'ग्रीन सालसाबिल' के छात्र-छात्रा *कोकाकोला* विरोधी संघर्ष हो या नर्मदा घाटी का सत्याग्रह, हर परिवर्तनवादी आंदोलन में न केवल पहुँचते हैं बल्कि अपने शिक्षकों के साथ पूरा अध्ययन कर उन मुद्दों पर बहस भी करते हैं। इसे केवल शोधपरक सहभागिता का जामा न पहनाते हुए ज़रूरी है कि यह शिक्षा का हिस्सा बने। कई बार दिखता है कि उच्च वर्ग-जाति के स्कूलों में पर्यावरण की जागृति लाने वाली शिक्षा की कोशिशें अधिक होती

हैं लेकिन आदिवासी या किसानी क्षेत्र की शालाओं में कम। अपने परिवेश से भिन्न जीवन और संदर्भ की तरफ़ रुचि और उसे जानने की उत्सुकता तो ठीक है लेकिन सोच समझकर अपने संसाधनों से अधिकारों तक को समझने, जानने की दिशा में पाठ्यक्रमों को ढालना और उसे 'बुनियादी' शिक्षा के रूप में अपनाना तभी संभव हो सकता है जब शिक्षा का कार्य सही अर्थ में समाजकार्य बने। गाँव में शिक्षक पहुँच रहे हैं या नहीं, इसका हिसाब रखने के लिए ही केवल सरपंचों और जहाँ शाला चल रही हैं, उस घर के मालिक या पड़ोसी के हस्ताक्षर लेने तक ही ग्रामीण शिक्षा में ''सहभागिता' ली जाती है। शहरी शिक्षा में तो यह भी नहीं होता है। धनिकों के स्कूलों में भी हमने देखा है कि सुशिक्षित माता-पिताओं को समारोहों में सजधजकर आने में और अपने बच्चों को प्राप्त पुरस्कारों में ही दिलचस्पी होती है। बच्चे को दी जाने वाली शिक्षा में छिपे मूल्य और 'जीवन संदेश' के प्रति उन्हें कोई चिंता नहीं होती। हमें इस दिशा में सोच जागृत करनी होगी।

वर्तमान शाला व्यवस्था के बाहर वंचित तबकों के बच्चों और माँ बाप तक पहुँचना है तो शासन को पूरी शिक्षा प्रणाली में खुलापन लाना होगा। 'जहाँ बच्चे हैं, वहाँ शाला' के सिद्धांत को मूर्त रूप देना होगा। बाल मज़दूर बने बच्चों से लेकर अपने छोटे भाई को सँभालने के लिए घर में बिठाई गई बच्चियों तक, सबको हमें अपने शिक्षा अभियान या 'जीवन शाला' में शामिल करना होगा। महाराष्ट्र में दिवंगत अनुताई वाद्य द्वारा आदिवासी क्षेत्र में 'चरागाह स्कूल', पत्थर की खदानों में कार्यरत मज़दूरों के बच्चों के लिए 'दगड़ी शाला' याने पत्थर शाला एवं शुगर फैक्ट्रियों के लिए गन्ने काटने वालों के बच्चों के लिए ''साखर शाला'' याने 'शक्कर शाला' ऐसी ही संकल्पना के प्रतीक हैं। लेकिन 'सर्व शिक्षा अभियान' जैसे शासकीय प्रयासों में अभी भी ऐसी विविधता और ज़मीनी शिक्षा कार्यक्रमों की कमी या उद्देश्य के प्रति कटिबद्धता की मर्यादा के कारण ये कार्यक्रम अपना दायरा बहुत नहीं बढ़ा पाए हैं।

शिक्षा से रोज़गार पाने की इच्छा है तो 'रोज़गार' से शिक्षा को जोड़ना पर रोज़गार से जीवन को जोड़ने के जैसा होना चाहिए। बाल मज़दूरों के संबंध में मालिकों और बच्चों को पढ़ाना ज़रूरी न मानने वाले परिवारजनों को केवल कानून के सहारे नहीं, बल्कि सामाजिक स्तर पर चाहे उद्योग हो या बस्ती या वॉर्ड, शिक्षा के प्रबंधन के कार्यक्रम से लेकर शिक्षाकर्मी और समाज के बीच संवाद की प्रक्रिया आवश्यक है। इससे भावी पीढ़ी की ही नहीं वर्तमान पीढ़ी

की वैचारिक अवधारणा भी और स्पष्ट होगी इसके अतिरिक्त सामाजिक एकता को भी इससे बढ़ावा मिलेगा। इसी के साथ स्वावलंबी विकास के प्रत्येक कार्य में सहभागिता, समाज में लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया को बढ़ावा जैसे कई लाभ भी प्राप्त हो सकते हैं। समाज में 'शिक्षा' से संबंधी एक ऐसी छुपी आस है जिसका उपयोग शिक्षा के समाजीकरण के लिए जनता को जगाने की सुप्त शक्ति की पूँजी के रूप में किया जा सकता है।

राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सद्भाव की शिक्षा

बाबा साहब अंबेडकर के संदेश से शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट है - सीखो, संगठित हो, संघर्ष करो। सीखने के बाद संगठित होने का अर्थ है शिक्षा को इंसानों, नागरिकों के जुड़ाव का साधन बनाना। आज देश में फैलती जा रही सांप्रदायिकता फिर चाहे जाति, मज़हब या प्रांत के नाम पर या संप्रदाय के आधार पर बढ़ती जा रही हो, अस्मिता की राजनीति को एक चुनौती है। आतंकवाद की सबसे खतरनाक जड़ इसी में है, बंदूक या बम में नहीं। क्या शिक्षा इसे निपटाने का औज़ार हो सकती है? क्यों नहीं? समान शिक्षा–शिक्षा की एक ऐसी धारा होगी जिसमें अंबानी-टाटा और उनके मज़दूरों के बच्चे एक साथ पढ़ेंगे; हिंदू, मुस्लिम, सिख, जैन या बौद्ध समाज के बच्चे साथ-साथ पढ़ेंगे। आतंकवाद के इस नए स्वरूप से निपटने का इससे अधिक प्रभावी साधन क्या हो सकता है। सच्चर आयोग की रिपोर्ट हो या मण्डल आयोग का अनुकथन इसी विषमता को उजागर करता है। बहुजन या अल्पसंख्यकों को विशेष स्थान, सम्मान या सहूलियतें देने के साथ दोनों रिपोर्टों में विषमता निर्मूलन के साथ ही साथ जाति निर्मूलन के लिए जो सिफ़ारिशें की गई हैं; उन पर भी अमल तो होना ही चाहिए। लेकिन सबसे पहले शिक्षा के औपचारिक पाठ्यक्रमों में छपे या वाक्यों के बीच छिपे भेदभाव की खोज जैसे प्रसंगों को निकालना सबसे अहम् है। इसी के साथ ही पाठशाला-विश्वविद्यालयों के बाहर नकारात्मक प्रभाव डाल रहे सभी माध्यमों की चिकित्सा की भी अत्यंत आवश्यकता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रचार प्रसार में 'शिक्षा' का भरपूर एजेंडा है। अगर सांप्रदायिकता फैलाने में मददगार होता है तो सर्वधर्म समभाव का स्कूली शिक्षा पाठ भी बच्चे के मन पर असर नहीं कर पाता। राज ठाकरे द्वारा फरवरी-2008 में ही शुरू किए प्रांतीय आधार पर हमले के चित्र बार बार देखकर युवा द्वारा 'हमारे रोज़गार पर बिहारी की बुरी नज़र क्यों जैसे सवाल के साथ युवा का खड़े हो जाना कतई अस्वाभाविक नहीं

है। औपचारिक नहीं तो अनौपचारिक 'शिक्षा' के द्वारा लोकतंत्र में अपने विचार रखने की, किसी धर्मवादी या जातीय भावना की आज़ादी को भी हम सहजता से नकार नहीं सकते। इसके बावजूद समझ बढ़ाने वाले कार्यक्रमों के द्वारा शिक्षा ही नहीं, जीवन मूल्यों पर समाज में तीखी बहस को किसी तरह की कानूनी कार्रवाई के पहले प्रारंभ कर भी सामाजिक माहौल का दबाव तैयार करना ज़रूरी है। यह कार्य कठिन अवश्य है परंतु असंभव नहीं। शिक्षा में प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्टता, संस्कृति, विशेषताएँ और अस्मिता भी बनी रहनी चाहिए। शासनकर्ता राजनीति के भेदभाव पूर्ण आचरण में डूबे हुए हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए समाज का उन पर भी अंकुश एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। अतएव शासन को उसकी ज़िम्मेदारी का भान कराते हुए शिक्षा के तमाम उद्देश्यों को रेखांकित करते हुए शिक्षा के समाजीकरण की ओर मोड़ना होगा। इस हेतु आज राजनीतिक हस्तक्षेप से ही नहीं बल्कि गैर बराबरी फैलाती आर्थिक सत्ता के बाज़ारू हाथ में पड़ा शिक्षा का वास्तविक ''समाजीकरण'' अथवा ''लोकतांत्रिकरण'' करने में समाज को पहल करनी होगी। यह आवश्यक है 'स्वतंत्र शिक्षा आयोग' के साथ साथ हर ज़िले में शिक्षा सहयोग प्रतिष्ठान, जिसमें पब्लिक पार्टनरशिप (जनता की पूर्ण भागीदारी) के सिद्धांत पर अमल भी हो और सारा शिक्षा क्षेत्र उसी की निगरानी में रहे। ग्रामसभा और वार्ड सभाओं की भूमिका प्राकृतिक संसाधनों के अधिकार और नियोजन के लिए जितनी ज़रूरी है, उतनी ही शिक्षा जैसे 'सामाजिक संसाधन' से संबंधित अधिकार और कर्त्तव्य को लेकर भी है। हम सब, जो आज की स्थिति में परिवर्तन चाहने वाले अध्यापक, विद्यार्थी, पाल्य और पालक के नाते नहीं बल्कि नागरिक होने के नाते और इंसानियत की अहमियत मानते हुए प्रशासकीय संरचना में ही न फँसते हुए, सक्रिय होकर न केवल विविध शिक्षण संरचनाओं की परिकल्पना भर करें बल्कि इस संबंध में एक आंदोलन भी खड़ा करें। यह कब और कैसे होगा, इस पर विचार अवश्य करें।

व्यापक उद्देश्य के साथ जोड़ें व्यापक माध्यमों को!

गहरे उद्देश्य और व्यापक दायरे के लिए 'औपचारिक' शिक्षा या संस्थानीय 'अनौपचारिक' शिक्षा का कार्य, उसके माध्यम या पाठ्यक्रम अधूरे और अपर्याप्त साबित होते हैं। इनकी सीमाओं को समझने के लिए हमें सामान्यतया शिक्षा के क्षेत्र में न गिने जाने वाले, परंतु समाज की मानसिकता बनाने में प्रभावी अन्य

माध्यम और प्रक्रियाओं की नाप-तोल करनी होगी। उनके व्यापक प्रभाव को समझने के पश्चात् ही हम उस माध्यम के द्वारा सामाजिक मूल्य, मुद्दे, परिवर्तनकारी कार्य की समझ बनाने के विशेष प्रयास का महत्त्व समझ पाएँगे। उसके लिए हमें हमारे तौर तरीके और शिक्षा विषयक समझ भी अधिक व्यापक और सब को साथ लेने वाली बनानी होगी। जागरूकता में वृद्धि करने वाले ऐसे सामाजिक प्रयासों को आज के दृश्य श्रृव्य तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यमों से लेकर जाति, समाज तथा धर्म संप्रदाय द्वारा चलाए जा रहे कतिपय संकुचित, बंदिस्त, संकीर्ण कटिबद्धता के साथ काम करने वाली जाति पंचायतें या मदरसा जैसी संस्थाओं में भी खोजना होगा। इतना ही नहीं, कई राजनीतिक प्रक्रियाएँ, प्रचार प्रसार के माध्यम और संस्थाएँ ही बड़े पैमाने पर समाज को प्रेरित और प्रभावित कर रही हैं। इसके अलावा इस क्षेत्र में जनआंदोलनों की एवं गैर-चुनावी जनसंगठनों की राजनीति की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इन सबमें हमारा हस्तक्षेप, चाहे वह संवाद के रूप में हो, संबंधित इलाके के भ्रमण के रूप में हो या मुद्दों पर बहस के रूप में तो कभी संघर्ष और चुनौती के माध्यम से हो, अपने किसी भी स्वरूप में यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस कार्य में हमें अपनी सोच की कट्टरता को समाप्त करना होगा और शिक्षा में खुलापन लाने की और उसमें राष्ट्रीय मूल्यों से लेकर मानवाधिकार तक की बातों को स्थान दिलाने की भरसक कोशिश किए बिना हमें चुप नहीं बैठना चाहिए। सामाजिक माध्यमों को उनके सही अर्थों से नज़रअंदाज़ करके हम अपने उद्देश्य पूरे नहीं कर सकते।

विभिन्न माध्यमों की स्थिति तो हमारे सामने स्पष्ट है। पूँजी और बाज़ार के प्रभावों की बलि बनते जा रहे ये माध्यम समाज को 'उपभोक्ता' के रूप में देखकर ही अपना संदेश और क्रियाकलाप तय करते हैं। ये व्यक्तिवाद, स्पर्धा, व्यक्तिगत स्वार्थहित को ही सब कुछ मानकर व्यापार और उपभोग की मात्र शिक्षा ही नहीं बल्कि दीक्षा देते हैं। विश्वस्तर पर पहुँचाने की ख्वाहिश का निर्माण करते हुए ये स्थानीय सांस्कृतिक और प्राकृतिक विशेषताओं को ही क्या, इतिहास और भूगोल को भी कोई स्थान देना गैरज़रूरी समझते हैं। समाचार के ही मूल्य को अहम मानकर ये ''विचार'' को दुर्लभ या निचला स्थान देने दिलवाने में कामयाब हो जाते हैं। इनकी सीख से कई युवा या बुजुर्गों को भी 'नयी शिक्षा' ही क्या ''नया जीवनदर्शन'' प्राप्त होता है। लेकिन 'विज्ञापनों' माध्यमों में, विशेषत: मुख्य धारा के चैनलों में, जनसामान्य की प्राथमिकताओं के लिए स्थान

ही नहीं है क्योंकि इससे उन्हें आर्थिक लाभ नहीं मिलता। परंतु हम इन परिस्थितियों से हार नहीं मानेंगे।

प्रिंट माध्यमों की भी ब्यौरेवार समीक्षा के द्वारा उनकी भूमिका और सीमा का आकलन ज़रूरी है। साथ ही एक चुनौती के रूप में इन माध्यमों पर लगातार दस्तक भर देना ही नहीं बल्कि घुसपैठ करने को चुनौती के रूप में स्वीकारना होगा। इसी के साथ वैकल्पिक माध्यमों का प्रचार और प्रभाव भी बढ़ाना होगा।

मुख्यधारा के माध्यमों में जगह बनाने का कार्य, उनके चरित्र को देखकर ही हताश होने से नहीं बल्कि मेहनत, लगन और सृजनशीलता से ही होगा। नर्मदा बचाओ आंदोलन का हमारा अनुभव बताता है कि भले ही हाथ में पूँजी और सत्ता न हो लेकिन अपनी खबर या सोच मीडिया तक पहुँचाने के लगातार प्रयासों से कुछ न कुछ हासिल तो ज़रूर होता ही है। कंप्यूटर और सुविधाओं के माध्यम से भी जो कार्य संस्थाएँ या व्यक्ति नहीं कर सकते, वह काम सामाजिक कार्यकर्त्ता नवाचार से संभव कर सकते हैं। इसके लिए विज्ञापन तैयार करने वाले कमर्शियल व्यावसायिकों से कहीं अधिक मेहनत की ज़रूरत होती है। मुझे याद आता है, 20 से 30 दिनों तक चले हमारे कार्यक्रमों में हर दिन नई खबर नए ढंग से पहुँचाने के लिए अभ्यास के साथ ही साथ विशेष कुशलता ज़रूरी होती थी। इस हेतु आवश्यक था कि ऐसी विज्ञप्ति तैयार की जाए जो केवल आकर्षक ही नहीं किंतु ठोस और नयी जानकारी पर आधारित हो और सबका ध्यान आकर्षित भी करे। इसी के समानांतर इसे नियमितता तथा तत्परता के साथ पहुँचाना भी एक महत्त्व का कार्य हुआ करता था। हम जब पुलिस के घेरे में शासकीय दमन के बीच, भूमिगत होकर रह रहे थे, तब भी मणिबेली जैसे पहाड़ी गाँव से सुबह चार बजे उठकर नदी पार करके कई कि.मी. पैदल चलकर जाने वाले कार्यकर्ता ही बाहर की दुनिया, समाचार माध्यम और व्यापक समाज तथा आंदोलन के बीच पुल बनकर रहते थे। कभी कॉलम लेखक तो कभी शोधकर्ता, तो कभी पत्रकारिता के विद्यार्थी भी हमारी बात इन समाचार माध्यमों में प्रकाशित करवाने में कामयाब हो जाते थे। इस तरह हमने व्यापारी जगत के साथ समझौता न करते हुए भी वहाँ चल रही स्पर्धा के बावजूद अपने संघर्ष को उनके यहाँ स्थान दिलवाया।

यह बात भी सच है कि यह कितनी भी भयावह या अन्यायपूर्ण हकीकत हो, लेकिन मालिकों-मुनाफ़ाखोरों के दबाव में सामाजिक सरोकार की बातों को सोच समझकर दूर रखने की साज़िश समाजीकरण में बड़ा अवरोध पैदा करती

है। बिल्डर्स और राजनीतिज्ञों के इन प्रचारक माध्यमों में निवेशक होने के नाते आभार, शहरी गरीबों के घरों या हकों पर चलने वाले बुलडोज़र की खबर इन माध्यमों से प्रसारित नहीं होती। गरीबों के लिए लिखने वाले युवा पत्रकार को दबाने और डराने धमकाने तक की बातें प्रकाश में आई हैं। लेकिन लाखों लोगों के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संघर्ष को देखकर अचानक कोई मुद्दा उभर आता है। उदाहरण के लिए मुंबई में एक साथ 75,000 झुग्गी-झोपड़ी गरीब घर कुचलने के विरुद्ध चले आंदोलन की खबर तब उठी जब हमारी संगठित महिलाओं ने उनकी ज़मीन हड़पकर लगाई गई तार तोड़ी और उसी गंदी जगह पर अपना 'सत्याग्रह' शुरू किया। कहने का अर्थ यह है कि केवल माध्यमों को नज़र में रखकर की गई दिखावटी कार्यवाही भी काम नहीं देती। सच्ची लगन और कटिबद्धता के साथ, जान की बाज़ी लगाने वाली कार्यवाही ही माध्यमों को स्वमेव खींच लाती है। शासन और समाज पर प्रभाव-दबाव बनाने और उनके निर्णय सार्वजनिक हित में परिवर्तित कराना चाहने वाले सामाजिक कार्यकर्ता भी माध्यमों में स्वयं की उपस्थिति को ही 'उद्देश्य' का अथवा साधनों को साध्य का दर्जा नहीं दे सकते। अगर ऐसा हुआ तो उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। कई बार कई मुद्दों का माध्यमों से पूर्ण लुप्त कर दिया जाना भी अपना असर लाता है, और अंततः वही महत्त्व की पूँजी बनती है। आखिर समाज में जागृति लाने के लिए केवल माध्यमों का साथ चाहने वाले, छोटे समूह में भी अपनी सामाजिक सोच पहुँचाने में पूरी ताकत और कुशलता लगती है। हम सब तो लाखों-करोड़ों तक प्रभाव बढ़ाने की महत्वाकांक्षा नहीं बल्कि एक-एक इंसान और समाज समूह को बदलने की तमन्ना रखते हैं। शिक्षा के समाजीकरण की इस तरह कई दायरों और स्तरों में बढ़ाने की कोशिश साथ ही साथ चलती रहती है।

वैकल्पिक माध्यमों की जितनी भी चर्चा की जाए उतनी कम है। 'मुख्य धारा' कई मायने में 'मुख्य' और 'व्यापक' नहीं होती है। समाज की बड़ी जनसंख्या, जिसमें ज़रूरतमंद तबका उसकी परिधि पर या उससे भी बाहर ही रहते हैं। इस विडंबना को जानकर हमें नए माध्यमों के निर्माण और समन्वय पर विचार करना ज़रूरी है। आज छोटे-छोटे समूह या संस्था द्वारा अपना बुलेटिन, मुखपत्र या पत्रिका भी निकाली जाती है। कहीं कहीं तो ढेर सारा समय और पैसा खर्च करने के बावजूद उनकी पहुँच बहुत कम होती है। इन प्रयासों में समन्वय का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति या संस्था नया पत्र न निकालते हुए उपलब्ध पत्रिकाओं में से समविचारी कौन है यह चुनकर उसी में अपनी जगह बनाए और

उसमें योगदान करे। साथ ही उपलब्ध विचार-साहित्य को विशेष दर्जा देने के लिए विचार को पुस्तक या प्रदर्शनी के रूप में प्रस्तुत करना भी सहायक सिद्ध हो सकता है। इन माध्यमों पर जनशक्ति जुटाकर, इन पर चर्चा करना भी महत्वपूर्ण हो सकता है। '*स्लमडॉग मिलिओनेअर*' जैसी फिल्म के ऑस्कर पुररस्कृत होने पर उसके दर्शन पर संगोष्ठियाँ, 'मुख्य' और 'विमुख' प्रवाहों को जोड़ने वाली हो सकती हैं, इससे सामाजिक शिक्षा के लिए '*स्लम*' यानि शहर की गरीब बस्ती जैसा विषय - उसकी अनाधिकृतता', 'अतिक्रमण', 'गंदगी', 'गुंडागर्दी' या विरोधी छवि के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया जा सकता है। भूकंप या सुनामी के बाद पर्यावरण की, आतंकवादी हमले के बाद हिंसा और अहिंसावादी सोच, सूखा पड़ने पर जल नियोजन की, युद्ध के परिप्रेक्ष्य में *वसुधैव कुटुंबकम* की चर्चा जैसे विषयों को शिक्षा का हिस्सा बनाने के लिए हमारी तैयारी ज़रूरी है। मानव अधिकार या आवास पर या रोज़ी-रोटी में भी शिक्षा को केंद्र में रखते हुए कई *डॉक्युमेंटरीज़* बनाने वाले आनंद पटवर्धन, सुमित्रा भाव, सागरी छाबड़ा, या महाविद्यालयीन शिक्षाक्रम में ये मुद्दे डालने के लिए कार्यरत देवकी जैन जैसे सामाजिक शिक्षाविद् विशेष योगदान के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। हमें भी यह कार्य करना होगा। इन माध्यमों में, न केवल संदेश ठोस देना होगा, बल्कि भाषा से लेकर भी स्पष्टता बनानी होगी।

हमारा लक्षित तबका दलितों, शोषितों, पीड़ितों का है। अतएव हमें उनके लिए एक ऐसी भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना होगा जो कि मात्र ''मान्यता प्राप्त'' और अतिशुद्ध होने का दावा नहीं करती हो बल्कि ऐसी भाषा या बोली हो जो दिल को छू सके। आदिवासी बोलियों में सामाजिक मुद्दों पर पर्चा निकालकर प्रत्येक जनसंगठन घर-घर तक उनकी बात पहुँचाने का प्रयास करता है। परंतु शहर के किसी भी महाविद्यालय में पहाड़ी, आदिवासी या आंचलिक बोलियों को किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिए जाने से शहरी तबका इस प्रक्रिया का सदभागी नहीं बन पाता। हम सब ऐसा होता देखते रहते हैं। इस प्रक्रिया को बदलना होगा। भाषा की विविधता में जो ताकत है उसे तोड़-मरोड़कर, उसका विरोध कर किसी एक भाषा के एकाधिकार द्वारा 'एकता या एकात्मकता' लाने का मार्ग तलाशना हमारी बेबुनियादी सोच है। शिक्षाविदों का यह स्पष्ट अभिमत है कि अपनी मातृभाषा में ही ज़मीनी या मूलभूत भाषा में जड़मूल से विचारों का निर्माण होता है। भाषा का संबंध अपने परिवेश और जीवनदृष्टि से भी होता है, अतएव उसकी विविधता बनी रहने से ही वास्तविक लोकतांत्रिक

और जनवादी शिक्षा संभव हो पाएगी। आनंद भारती जैसी संस्था ने विभिन्न भाषाओं में लिखे उत्कृष्ट साहित्य के अनुवाद का वृहद कार्य वर्षों से हाथ में ले रखा है, इसे भी इस दिशा में योगदान देने वाला कार्य समझा जाना चाहिए। परंतु शिक्षा के समाजीकरण के लिए इतना ही कार्य नहीं है बल्कि इस हेतु आवश्यक है कि साहित्य के साथ-साथ अन्य माध्यमों के प्रति भी हमारा खुलापन बढ़े और उसे जाति, धर्म, प्राँत या ऊँच-नीच से ऊपर उठकर देखे। इससे इस प्रक्रिया में सहायता मिलेगी। जनआंदोलनों के राष्ट्रीय समन्वय की प्रक्रिया में हम अपने साहित्य का छः भाषाओं में अनुवाद करने के बाद सम्मेलन को सफलता दिला पाए अथवा 'देश बचाओ - देश बनाओ' यात्रा को प्रत्येक राज्य तक पहुँचा पाए। दुर्भाग्य है कि नारे और प्राँतीय भाषा के चार वाक्यों से भी परहेज़ करने वाले, समय आने पर मजबूरी में ही सही विभिन्न भाषाओं के लिए अपने कान खोलते हैं और जल्दी ही स्थिति पलटती भी है। इसमें हम सबका संकल्प और ताकत भी कई गुणा बढ़ती है।

समाजीकरण से सामाजिक शिक्षा को चुनौती

मूल्यहीन बनी हमारी राजनीति आज भी समाज की सोच बनाने, बदलने में माहिर है। जब मैं राजनेताओं के शिक्षा संस्थानों की बात करती हूँ तो उससे मेरा आशय होता है मुद्दों और समस्याओं के 'राजनीतिकरण' से। फिर मुद्दा चाहे आतंकवाद का हो या किसानों की आत्महत्याओं का, राजनेता प्रत्येक मुद्दे का अपनी राजनीतिक अभिलाषा या स्वार्थ से आकलन करते हैं और इस प्रक्रिया में अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारियाँ भूल जाते हैं। इतना ही नहीं इनका एक समुदाय तो समता, बंधुत्व, स्वावलंबन और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के खिलाफ लोगों को भड़काने में लगा हुआ है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि संवेदनशील नागरिकों द्वारा ऐसी राजनीति की ज़बरदस्त भर्त्सना किए जाने के बावजूद राजनैतिक प्रचार-प्रसार समाज को बनाने या बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दुखद बात यह है कि चुनाव के माहौल में इस मुद्दे पर कोई बहस या विवाद होता है तो हमारी अपनी बिरादरी के लोग एकजुट नहीं दिखते।

हमने देखा है कि प्रत्येक आतंकवादी हमले के बाद-चाहे वह संसद पर हो, चाहे 'ताज' पर। चुनावी राजनीति युद्ध ज्वर फैलाने का कार्य करके वर्षों से समभाव पैदा करने वाली, शिक्षा, जनजागरण या संगठन के कार्य को पीछे

धकेलती है। किसान जैसा फेंटा बाँधकर खड़े राजनेता किसान के योगदान को आर्थिक एवं राजनीतिक मंचों पर कोई स्थान ही नहीं देते। ऐसे में विविध सामाजिक प्रक्रियाओं, सरोकारों, संघर्षों से या फिर रचनात्मक कार्यों से समाज में दमित आकांक्षा, विषमता एवं भेदभाव को मिटाने के प्रति कटिबद्धता, विश्वास और ऊर्जा बनाए रखने के लिए 'सामाजिक शिक्षा' ही तो काम में आती है। यह भी ज़रूरी है कि सामाजिक शिक्षा में समाज में परिवर्तन लाने का स्वर निहित हो। इस महत्वाकांक्षा को केवल सपना न मानते हुए हमें कहीं न कहीं से शुरुआत तो करनी ही होगी। इस हेतु हम 'चुनाव सुधार' से लेकर ग्राम या बस्ती का अपने संसाधनों पर पहला अधिकार मानने वाले लोकतांत्रिक मुद्दे को सामाजिक बहस और विकास के नज़रिए का मुद्दा बना सकते हैं। हमारे सामने ऐसे कई उदाहरण दिखते हैं जहाँ आम जनता ने एक दूसरे को पुकारा और राजनीतिक माहौल को चुनौती दी। तकनीकी विकास ने बाज़ार को बढ़ावा दिया है। मोबाइल-इंटरनेट तकनीक का उपयोग कहीं तो लाखों को इकट्ठे करने के लिए किया जा रहा है वहीं दूसरी ओर इन माध्यमों का उपयोग इराक युद्ध के दौरान आतंक और हिंसा को नकारने के लिए एवं सामाजिक आदान-प्रदान और जनशक्ति जुटाने के नए तौर-तरीके के रूप में भी सामने ला रहा है। यह भी संभव है कि इन प्रयासों में क्षणिकता और ऊपरी भावना के कारण विफलता भी मिले लेकिन राजनीतिक प्रक्रियाओं में भी ऊर्जा की कमी है। लगाई जाने वाली ऊर्जा में कई गुना वृद्धि होने से ऐसे प्रयास लंबा असर छोड़ते हैं। इसे भी राजनीति को चुनौती देने वाली 'सामाजिक शिक्षा' या सामाजिक जागरण की प्रक्रिया मानें तो आज़ादी, आंदोलन, 70 के दशक का नव निर्माण आंदोलन से लेकर वर्तमान में नंदीग्राम, रायगढ़ या नर्मदा घाटी में चल रही अजनतांत्रिक, विनाशकारी विकास नीति के विरोध में चल रहे सतत् संघर्ष तक के अनुभवों के आधार पर हम अपनी बात को प्रामाणिकता दे सकते हैं।

शिक्षा - एक छोटा सा शब्द है परंतु उसकी परिभाषा उद्देश्य, दायरा, माध्यम और प्रक्रियाओं में 'समाजीकरण' की दिशा में योगदान की चुनौती हमें सतत् कार्यरत रहने की प्रेरणा देती है। हम जो भी करते हैं, उस कार्य को 'समाज और बंधन' का कार्य मानने से हमारी ज़िम्मेदारी बढ़ती है और हमें अपना कार्य भी अर्थपूर्ण लगता है फिर वह कार्य चाहे संघर्ष का हो या रचना का। भूमंडलीकरण और पूँजीवाद के इस विस्तारित माहौल में न केवल आर्थिक मंदी बल्कि मानवीय मूल्य, अधिकार और रिश्तों में आ रही गिरावट, प्रकृति के तापमान से

लेकर सूखा, बाढ़ और भूचाल के रूप में उभरा विनाश और राजनीतिक खोखलापन हमें अधिक मजबूर कर रहा है कि हम हमारी जीवन संस्कृति और प्रकृति के प्रति अपनी सोच में परिवर्तन लाएँ और उस दिशा में आगे बढ़ने का सतत् प्रयास भी करें। अन्यथा हमें हमारे आज के युवा और बच्चे तथा आने वाली पीढ़ी भी माफ़ नहीं करेगी।

वक्ता के बारे में

सुश्री मेधा पाटकर, ***नर्मदा बचाओ आंदोलन*** की संस्थापक, एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में उन लाखों लोगों के पुनर्वास के लिए कार्यरत हैं जिन्हें सरदार सरोवर बाँध और नर्मदा नदी पर बने अन्य बड़े बाँधों के कारण विस्थापित होना पड़ा। इन्होंने इस मुद्दे पर राष्ट्रीय आंदोलन आरंभ किया जो मजदूरों, आदिवासी समूहों, दलितों, महिलाओं और श्रमिकों का एक गैर निर्वाचित राजनैतिक गठबंधन है, जो धर्मनिरपेक्ष है और वैश्वीकरण के विरुद्ध, उदारीकरण आधारित आर्थिक नीति और वैकल्पिक विकास के प्रतिमानों तथा योजनाओं के लिए गठित किया गया है। इन्होंने इसके राष्ट्रीय समन्वयक के रूप में कार्य किया। वर्तमान में ये इसकी राष्ट्रीय संयोजिका हैं और विश्व बाँध आयोग की सदस्य हैं, जो दुनिया भर में पानी, बिजली और बाँधों से संबंधित वैकल्पिक मुद्दों की छानबीन के लिए गठित प्रथम स्वतंत्र वैश्विक आयोग है।

टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस से सामाजिक कार्य में स्नातकोत्तर होने के बाद इन्होंने कई प्रतिष्ठित पुरस्कार जीते जैसे आजीविका आधार पुरस्कार, (जिसे आम तौर पर वैकल्पिक नोबल शांति पुरस्कार भी कहा जाता है) गोल्ड मेन पर्यावरण पुरस्कार, महात्मा फुले पुरस्कार, बीबीसी की ओर से ग्रीन रिबन पुरस्कार और मानव अधिकार रक्षा पुरस्कार, जो इन्हें एमनेस्टी इंटरनेशनल की ओर से दिया गया था। इन्हें अनेक राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुए। इनमें से कुछ पुरस्कार हैं–स्वर्गीय बैरिस्टर नाथ पाइ पुरस्कार, छत्र भारती पुरस्कार, प्रभा पुरस्कार, डॉ. एम.ए. थोमस मानव अधिकार पुरस्कार तथा दीना नाथ मंगेश्कर पुरस्कार।

इनके पिता स्वर्गीय श्री वसंत खानोलकर स्वतंत्रता सैनानी थे, जिन्होंने जीवनभर ट्रेड यूनियन के क्षेत्र में कार्य किया। इनकी माँ श्रीमती इंदू खानोलकार एक शासकीय कर्मचारी के रूप में सेवानिवृत्त हुईं और वे मुंबई में स्वाधार नामक

महिला संगठन में कार्यरत हैं। मेधा पाटकर हायर सेकेंडरी स्कूल परीक्षा में राष्ट्रीय मेधावी छात्रा थीं। इन्होंने रूइया कॉलेज, मुंबई से विज्ञान में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। इन्होंने टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस, मुंबई से सामाजिक कार्य में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की तथा स्कूल तथा कॉलेजों में संवाद, वाद विवाद और नाटकों में विभिन्न पुरस्कार जीते। इन्होंने पी.एच.डी. के लिए पंजीकरण तो किया किंतु आंदोलन में शामिल होने के कारण अपना अनुसंधान कार्य पूरा नहीं कर सकीं।

मेधा पाटकर ने टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज़ में स्नातकोत्तर छात्रों को संकाय के सदस्य के तौर पर तीन वर्ष तक सामाजिक कार्य और क्षेत्रीय कार्य विषय पर पढ़ाया। कई स्वैच्छिक संगठनों में भी शामिल रहीं और इन्होंने 5 वर्ष तक एक बड़ी झुग्गी झोंपड़ी विकास परियोजना सीएएसपी (CASP) प्लान में प्रशासक के रूप में मुंबई की झुग्गी झोंपड़ियों में काम किया। गुजरात के उत्तर पूर्वी जिलों में इन्होंने विकास और सामाजिक न्याय के विभिन्न मुद्दों पर जनजातीय समूहों के एक स्वयं प्रेरित छोटे समूह के साथ सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य किया। साथ ही समेकित बाल विकास सेवा और माँ तथा बच्चे के स्वास्थ्य पर यूनिसेफ के एक परामर्शदाता के रूप में कार्य किया।

वर्तमान में भी मेधा पाटकर जी 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' में जी जान से जुटी हुई हैं।

अनुलग्नक I

स्मृति व्याख्यान माला – 2007-08

क्र. स.	नाम	तारीख	स्थान	वक्ता	विषयवस्तु	अध्यक्ष
1.	महात्मा गाँधी स्मृति व्याख्यान	17 जनवरी, 2007	इंडिया इंटरनेशनल सेंटर, नयी दिल्ली	प्रोफ़ेसर क्रिस्टोफर विंच शैक्षिक मनोविज्ञान एवं योजना किंग्स कॉलेज, लंदन (यू. के.)	व्यक्ति, कामगार या नागरिक? विद्यालय आधारित शैक्षिक सुधार की सीमाओं पर विचार	प्रोफ़ेसर मृणाल मिरि सेवानिवृत्त वाइस चांसलर एन.ई.एच.यू., शिलांग
2.	ज़ाकिर हुसैन स्मृति व्याख्यान	19 जनवरी, 2007	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान मैसूर	डा. राधिका हर्ज़बर्गर निदेशक, ऋषिवैली स्कूल, चित्तूर, आंध्र प्रदेश	धर्म, शिक्षा और शांति	प्रोफ़ेसर बी.एल.चौधरी वी.सी मोहनलाल सुखड़िया युनीवर्सिटी, उदयपुर, राजस्थान
3.	महादेवी वर्मा स्मृति व्याख्यान	17 अगस्त, 2007	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान भोपाल	प्रोफ़ेसर करुणा चानना सेवानिवृत्त प्रोफ़ेसर ज़ाकिर हुसैन सेंटर फॉर ऐजुकेशनल स्टडीज़, स्कूल ऑफ सोशल साइंसेस, जे.एन.यू.	भारतीय शिक्षा जगत में महिलाएँ-एक प्रतिस्पर्धी क्षेत्र में विविधता, विभिन्नता और असमानता	प्रोफ़ेसर आर.एस.सिरोही वाइस चांसलर बरकतुल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल
4.	बी.एम. पुग स्मृति व्याख्यान	11 मार्च, 2008	लैतुमखरह वुमेन्स कॉलेज, शिलांग	श्री रतन थियाम चेयरपर्सन कोरस रेपरटरी थियेटर, शिलांग	रंगमंच, भाषा एवं अभिव्यक्ति	प्रोफ़ेसर टी. एओ डीन स्कूल ऑफ ह्यूमेनिटीज़ एन.ई.एच.यू., शिलांग
5.	मार्जरी साइकस स्मृति व्याख्यान	8 अप्रैल, 2008	जवाहर रंग मंच क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान अजमेर	सुश्री मेधा पाटकर (सामाजिक कार्यकर्त्ता)	समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति	प्रोफ़ेसर एम. एस. अगवानी सेवानिवृत्त वाइस चांसलर, जे.एन.यू.

6.	श्री अरविन्द स्मृति व्याख्यान	2 जुलाई, 2008	डोरोज़ियो हाल प्रेसिडेंसी कॉलेज कोलकाता	श्री मोहनदास इंटरनेशनल सेंटर ऑफ एजुकेशन श्री अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी	शिक्षा जो भविष्य में आस्था जगाए	प्रोफ़ेसर संजीव घोष प्रिंसिपल, प्रेसिडेंसी कॉलेज कोलकाता
7.	रविन्द्र नाथ टैगोर स्मृति व्याख्यान	19 जुलाई, 2008	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर	प्रोफ़ेसर एन.आर.मेनन सदस्य कमीशन ऑन सेंटर स्टेट रिलेशंस	स्थिति एवं अवसर की समानता का अहसास–सरकार की भूमिका, न्यायपालिका और नागरिक समाज की भूमिका	प्रोफ़ेसर चन्द्रशेखर रथ प्रतिष्ठित लेखक
8.	गिजुभाई बढ़ेका स्मृति व्याख्यान	11 सितंबर 2008 (वक्ता की बीमारी के कारण स्थगित)	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान मैसूर	श्री यू. आर. अनंथमूर्ति ज्ञानपीठ पुरस्कृत	मेरा लेखन मेरा समय	प्रोफ़ेसर जी.एच. नायक कन्नड साहित्यिक आलोचक
9.	सावित्रीबाई फूले स्मृति व्याख्यान	12 दिसंबर, 2008	मानीबेन नानावती महिला कॉलेज, मुंबई	डॉ. सुंदररमन निदेशक स्टेट हैल्थ रिसोर्स सेंटर	निवारणात्मक और प्रोत्साहनकारी स्वास्थ्य केंद्र के रूप में विद्यालय	डॉ. सुश्री विभूति पटेल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, निदेशक पी.जी.एस.के., एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय, मुंबई

टिप्पणी

टिप्पणी